

क्रियात्मक योग

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती



बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, मुंगेर, बिहार



क्रियात्मक योग .

संस्कृत-संस्कृत-संस्कृत
-संस्कृत-संस्कृत
संस्कृत-संस्कृत
-संस्कृत-संस्कृत
-संस्कृत-संस्कृत



Aditya Kumar Singh

Class-VI

ॐ

Aditya

क्रियात्मक योग

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती



वाक् केन्द्र पुस्तकालय-

प्रज्ञा न्यास-

पुस्तक संख्या

क सं०-

क सं०-



बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार

अप्रील २००२ एप्रील
II-२०१९

निःशुल्क वितरण

© प्रथम मुद्रण 1974

पुनर्मुद्रण 1978

सर्वाधिकार सुरक्षित स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

© 1983, 1992, 1998

सर्वाधिकार सुरक्षित बिहार योग विद्यालय

प्रकाशक - स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

मानद सचिव, बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार

टाइप सेटिंग - ग्लोबल प्रिंटेर्स, पटना

मुद्रक - भार्गव भूषण प्रेस, त्रिलोचन

वाराणसी, यू.पी., भारत

ISBN: 81-85787-59-X

बिहार योग विद्यालय से लिखित अनुमति के बिना इस पुस्तक के किसी भी
अंश का अन्यत्र मुद्रण या अन्य किसी रूप में प्रयोग वर्जित है।

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

परम गुरु स्वामी शिवानन्द का जन्म 8 सितम्बर 1887 को ताम्रपर्णी नदी के किनारे बसे गाँव, पट्टमडई में हुआ था। माता-पिता द्वारा दिया नाम था कुप्पुस्वामी। उनके पिता छठवीं शताब्दी के विद्वान् सन्त अप्पय दीक्षितार के वंशज थे। विद्यालयी शिक्षा के पश्चात् वे सन् 1905 में तंजोर के चिकित्सा महाविद्यालय में दाखिल हुए।

सन् 1913 में वे मलय देश गये। वहाँ जाहाटोबारु के एक चिकित्सालय का कार्यभार सम्भाला। वे वहाँ दस वर्षों तक चिकित्सक के रूप में कार्यरत रहे। बीमारों और गरीबों की सेवा की। ईश्वरीय आदेश प्राप्त होने पर 1923 में मलय देश छोड़कर पूना आये तथा वहाँ अपना सारा धन गरीबों में बाँट दिया और आध्यात्मिक खोज में निकल पड़े।

1924 में तप हेतु ऋषिकेश पहुँचे। 1 जून को ऋषिकेश में स्वामी विश्वानन्द सरस्वती द्वारा दशनामी (सरस्वती) परम्परा में दीक्षित हुए। 1925 में उन्होंने महात्माओं और साधकों की सुविधा हेतु एक दातव्य औषधालय एवं सत्य सेवाश्रम की स्थापना की। 1931 में 6 वर्षों के एकान्तवास के लिए स्वर्गाश्रम चले गये। वहाँ कठोर साधना में लीन रहे। 'निःस्वार्थ सेवा से ही मनुष्य अपने संस्कारों को पवित्र कर सकता है।' यह विश्वास था उनका।

सम्पूर्ण भारतवर्ष में लोगों को योगाभ्यास करने तथा आध्यात्मिक जीवन जीने की प्रेरणा देने के लिए उन्होंने 1932 में परित्राजक के रूप में उत्तरप्रदेश, बिहार, पंजाब, जम्मू-कश्मीर एवं आन्ध्रप्रदेश की यात्रा आरम्भ की और वेदान्त प्रचार में लीन रहे। 17 जनवरी 1934 को गंगा के दाहिने किनारे टेहरी गढ़वाल के महाराजा से प्राप्त जमीन पर आश्रम की स्थापना की, जहाँ से आध्यात्मिक पुस्तकों का प्रकाशन होने लगा। 1936 में ऋषिकेश में दिव्य जीवन संघ की स्थापना की।

1945 में शिवानन्द आयुर्वेद फार्मसी तथा 1948 में योग वेदान्त अरण्य अकादमी की स्थापना की। 1951 में योग वेदान्त अरण्य अकादमी प्रेस की शुरुआत की। 1953 में ऋषिकेश में विश्व धर्म संसद का आयोजन किया। 1957 में शिवानन्द नेत्र चिकित्सालय की स्थापना की। 1958 में शिवानन्द साहित्य शोध संस्थान का गठन किया। 1959 में शिवानन्द साहित्य प्रचार समिति का गठन किया। इसी वर्ष फ्रांस, स्विट्जरलैण्ड और बेल्जियम के दूरदर्शनों में उनके कार्यक्रम प्रसारित हुए। उन्होंने योग, स्वास्थ्य तथा आध्यात्मिक जीवन पर दो सौ से भी अधिक ग्रन्थों का प्रणयन किया। 14 जुलाई 1963 को अपना पृथिव शरीर छोड़कर ब्रह्मलीन हो गये।

परमहंस सत्यानन्द

आधुनिक युग में योग-संस्कृति के पुनरुद्धारक, परमहंस सत्यानन्द का जन्म 26 जुलाई 1923 को हिमालय की तराई में स्थित अल्मोड़ा में हुआ। उनमें बचपन से ही विलक्षण प्रतिभाएँ परिलक्षित होने लगी थीं। छः वर्ष की अवस्था में उन्हें प्रथम आध्यात्मिक अनुभूति हुई।

बचपन में ही उन्हें हिमालय के उच्चतर क्षेत्रों की ओर यात्रा करने वाले मनीषियों एवं साधुओं का आशीर्वाद प्राप्त होता रहा। इससे उनके भीतर अत्यन्त तीव्र वैराग्य-भाव उत्पन्न हुआ। उन्होंने उन्हीं दिनों संन्यासी सुखमन गिरि से तन्त्र-दर्शन की उच्च शिक्षा प्राप्त की।

उन्नीस वर्ष की अल्पावस्था में ही वे सम्पन्न गृह का सुख त्याग कर गुरु की खोज में निकल पड़े। कुछ समय बाद वे ऋषिकेश पहुँचे, जहाँ उन्हें स्वामी शिवानन्द सरस्वती के दर्शन हुए। 12 सितम्बर 1947 को गुरुजी ने उन्हें संन्यास में दीक्षित किया।

गुरु आश्रम में वे 12 वर्षों तक वे निरन्तर गुरुसेवा एवं कर्मयोग में रत रहे। अहर्निश गुरु सेवा एवं कर्मयोग ही उनकी साधना थी। स्वामी शिवानन्द जी की उनके प्रति यह धारणा ही बन गयी कि वे अकेले चार व्यक्तियों का कार्य करते हैं। वे आश्रम की सफाई से लेकर व्यवस्था तक के सभी प्रकार के कार्यों का सम्पादन निपुणता के साथ करते थे। गुरु-सेवा से उनका अत्यन्त अनुराग था तथा उसमें उन्हें अपार आनन्द मिलता था।

प्रखर बुद्धि से युक्त होने के कारण स्वामी शिवानन्द जी ने उन्हें 'बहुमुखी प्रतिभाशाली' की उपाधि दी थी। उनका ज्ञान आश्रम में दिये जाने वाले उपदेशों या पुस्तकों के अध्ययन पर आधारित नहीं था। उन्होंने अपने गुरु के इस निर्देश का आस्थापूर्वक पालन किया—“कठोर श्रम करो, जिससे तुम पवित्र हो जाओगे। आत्मज्ञान के लिए तुम्हें प्रयास नहीं करना है, आत्मज्ञान स्वयं तुम्हारे अन्तर से प्रकट होगा।” और अन्ततः ऐसा ही हुआ। आध्यात्मिक जीवन के अनेक रहस्य उनके सामने प्रकट हुए। इस प्रबोधन के फलस्वरूप वे योग, तन्त्र, कुण्डलिनी, वेदान्त एवं सांख्य के महान् विशेषज्ञ के रूप में प्रसिद्ध हो गये।

12 वर्षों तक संन्यास प्रशिक्षण पूर्ण करने के पश्चात् उनका परिव्राजक जीवन प्रारम्भ हुआ। एक परिव्राजक के रूप में उन्होंने आठ वर्षों तक सम्पूर्ण भारत, अफगानिस्तान, बर्मा, नेपाल एवं श्रीलंका का भ्रमण किया। समय-समय पर उन्होंने एकान्तवास भी किया तथा इसका उपयोग यौगिक तकनीकों को विकसित एवं परिष्कृत करने में किया, जिनसे मानवता को कष्टों से त्राण मिल सके।

सन् 1956 में उन्होंने 'अन्तर राष्ट्रीय योग मित्र मण्डल' की स्थापना की। आध्यात्मिक मार्ग में लोगों का पथ-प्रदर्शन करने हेतु उन्होंने सन् 1964 में मुँगेर

में 'बिहार योग विद्यालय' की स्थापना की। शीघ्र ही सम्पूर्ण भारत एवं विदेशों से जिज्ञासु एवं साधक इस विद्यालय में योग की शिक्षा ग्रहण करने आने लगे।

16 अप्रैल 1968 को परमहंस जी ने प्रथम विश्व-यात्रा के लिए मातृभूमि से प्रस्थान किया। यात्रा का उद्देश्य था विश्व शान्ति तथा विश्व बंधुत्व को बढ़ाना और प्राचीन योग विद्या को सामयिक आवश्यकतानुसार व्यावहारिक एवं वैज्ञानिक रूप देकर सभी जातियों, मतों, धर्मों एवं राष्ट्रीयता के लोगों के बीच लोकप्रिय बनाना। इस यात्रा से वे विश्व विख्यात हो गये। विश्व इतिहास अब इस सत्य को स्वीकार कर चुका है कि परमहंस सत्यानन्द ही प्रथम सन्त हैं, जिन्होंने योग को रहस्यमयता के आवरण से मुक्त कर उसे सही वैज्ञानिक आधार पर प्रतिस्थापित किया है। वे सर्वत्र योग एवं तन्त्र के अग्रगण्य प्रतिपादक माने जाते हैं। उन्होंने 1968 से 1983 तक 26 बार विदेश प्रवास किया। जिन देशों में उन्होंने योग की पताका फहरायी, वे हैं - इंग्लैण्ड, स्पेन, आयरलैण्ड, इटली, जर्मनी, फ्रांस, बेल्जियम, हॉलैण्ड, स्विट्जरलैण्ड, स्वीडन, इटली, ग्रीस, डेनमार्क, युगोस्लाविया, फिनलैण्ड, ऑस्ट्रिया, यू.एस.ए. कनाडा, ग्वाटेमाला, कोलम्बिया, इक्वेडोर, पेरू, ब्राजील, चिली, पनामा, अर्जेन्टाइना, उरुग्वे, एलसल्व्वादोर, मेक्सिको, त्रिनिडाड, सान्तो डोमिंगो, पुएर्टो रिको, दक्षिण अफ्रीका, इरान, ईराक, रूस, सिंगापुर, मलेशिया, हांगकांग, जापान, ऑस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैण्ड। वे विश्व के विभिन्न भागों में रहने वाले अनगिनत आध्यात्मिक साधकों के मार्गदर्शक तथा अनेक योगाश्रमों एवं योग केन्द्रों के प्रेरणास्रोत हैं।

सन् 1983 में उन्होंने स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती को अपना उत्तराधिकारी तथा बिहार योग विद्यालय एवं उससे सम्बद्ध योग केन्द्रों का अध्यक्ष नियुक्त किया। सन् 1984 में उन्होंने 'शिवानन्द मठ' की स्थापना की, जो एक दातव्य संस्था है। उसी वर्ष परमहंस जी ने यौगिक तकनीकों एवं तथ्यों पर वैज्ञानिक शोध करने के उद्देश्य से 'योग शोध संस्थान' की भी स्थापना की।

सन् 1988 में परमहंस सत्यानन्द ने मुंगेर छोड़कर एक परिव्राजक संन्यासी के रूप में भारत के सिद्ध तीर्थों की तीर्थ-यात्रा प्रारम्भ की। तदुपरान्त उन्होंने अपनी सभी संस्थाओं को सदा के लिए त्याग दिया और बैद्यनाथ धाम (देवघर) के निकट रिखिया में मात्र कौपीन धारण कर खुले आसमान के नीचे वैदिक युग के ऋषि-मुनियों द्वारा अपनायी गयी उच्चतम परम्पराओं के अनुरूप त्याग, वैराग्य एवं तपस्या में लीन हो पंचाग्नि साधना में रत हो गये। साधना की अवधि में उन्हें आदेश मिला—“जो सुविधा मैंने तुम्हें प्रदान की है, वे ही सुविधा अपने पड़ोसियों को प्रदान करो।” अब वे वहीं उन्हीं पड़ोसियों के समीप सकल लोक के कल्याण के निमित्त साधनारत हैं।

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

योगाकाश के देदीप्यमान मार्तण्ड, स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती का जन्म 14 फरवरी को मध्यप्रदेश के राजनौदगौव में हुआ। बाल संन्यासी निरंजनानन्द चार वर्ष की अल्पावस्था में ही 26 जुलाई 1964 को स्वेच्छा से गुरु मिशन में संलग्न हो गये और गुरु के सान्निध्य में उनकी गुरुकुल शिक्षा प्रारम्भ हुई। 11 जनवरी 1970 के दिन इन्हें संन्यास की दीक्षा दी गयी।

1 मार्च 1971 को इन्हें योगाश्रमों तथा योग केन्द्रों की स्थापना एवं विकास का कार्य सौंप कर विदेश भेजा गया। आगामी 11 वर्षों तक इन्होंने पूरे विश्व का भ्रमण किया। इस अवधि में इन्होंने इंग्लैण्ड, आयरलैण्ड, यूरोप, उत्तरी अमेरिका, दक्षिणी अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया आदि देशों में उनकी संस्कृति तथा आध्यात्मिक आवश्यकताओं का गहन अध्ययन किया और पूरे विश्व में कई योगाश्रमों को संगठित एवं संस्थापित किया।

19 जनवरी 1983 को गुरु परमहंस सत्यानन्द द्वारा इन्हें वापस भारत बुला कर बिहार योग विद्यालय के अध्यक्ष का भार सौंपा गया। उस समय से ये बिहार योग विद्यालय तथा सन् 1984 में स्थापित दो नयी संस्थाओं, शिवानन्द मठ एवं योग शोध संस्थान का कार्य-संचालन अत्यन्त सुचारु रूप से करते हुए अपने महान् गुरु के सुयोग्य उत्तराधिकारी सिद्ध हुए। विश्व के विभिन्न भागों में रहने वाले हजारों योग साधक एक महान् योगी एवं गुरु के रूप में इनका सम्मान करते हैं। 31 दिसम्बर सन् 1989 की मध्य रात्रि में इनके गुरु ने इन्हें 'परमहंस' की दीक्षा से विभूषित किया। इन्होंने योग, तन्त्र, एवं उपनिषदों पर व्यावहारिक एवं वैज्ञानिक ढंग से सरल एवं सुग्राह्य भाषा में अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया है। ये अनेक भाषाओं के ज्ञाता हैं।

अपने गुरु के संन्यास एवं समर्पण की स्वर्ण जयन्ती के पावन अवसर पर सन् 1993 में इन्होंने मुंगेर में विराट् विश्व योग सम्मेलन का अयोजन एवं संचालन किया। इस अवसर पर संन्यास परम्परा की मूर्धन्य विभूतियों द्वारा परमहंस सत्यानन्द के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी के रूप में इनका अभिषेक किया गया। इस सम्मेलन में विश्व के प्रबुद्ध सन्त-महात्मा, जाने-माने शिक्षा शास्त्री, समाज शास्त्री, मनोवैज्ञानिक एवं अन्य मनीषीगण तथा 32 देशों के हजारों योग साधक, वैज्ञानिक, एवं अन्य विद्वान् पधारे थे।

8 सितम्बर 1994 को इन्होंने परम गुरु स्वामी शिवानन्द सरस्वती की कल्पना एवं गुरु परमहंस सत्यानन्द के संकल्प द्वारा तैयार नींव पर गंगादर्शन, मुंगेर में विश्व के प्रथम योग विश्वविद्यालय - 'बिहार योग भारती' को मूर्त रूप दिया, जहाँ योग विद्या की उच्चतम शिक्षा प्रदान की जा रही है।

गहन आध्यात्मिक ज्ञान के साथ, बालसुलभ सरलता से विभूषित इनका सौम्य, विनम्र, करुणासम्पन्न व्यक्तित्व अनायास ही लोगों का हृदय जीत लेता है।

विषय सूची

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
---------	------	--------------

प्रथम खण्ड — योग की व्याख्या

१. योग का नये क्षेत्र	३
२. योग और शरीर विज्ञान	७
३. योग और मन	१०
४. ध्यान का उद्देश्य	१४
५. समाधि-योग साधना की परिणति	१७
६. योग दर्शन-भूमिका	२२

द्वितीय खण्ड — दैनिक जीवन में योग

१. योगासन	२९
१. पद्मासन	३२
२. सिद्धासन	३३
३. सुखासन	३४
४. स्वस्तिकासन	३४
५. शीर्षासन	३५
६. सर्वांगासन	३६
७. हलासन	३७

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
---------	------	--------------

८.	शवासन	३८
९.	भुजंगासन	३९
१०.	शलभासन	४०
११.	धनुरासन	४१
१२.	मयूरासन	४२
१३.	पश्चिमोत्तानासन	४३
१४.	वज्रासन	४४
१५.	सुप्त वज्रासन	४४
१६.	शशांकासन	४५
१७.	योगमुद्रा	४६
१८.	बद्ध पद्मासन	४६
१९.	अर्ध मत्स्येन्द्रासन	४७
२०.	मत्स्यासन	४८

२.	प्राणायाम	४९
१.	प्राणायाम की प्रक्रिया	५३
२.	प्राणायाम की स्थिति	५५
३.	साधारण या सुखपूर्वक प्राणायाम	५६
४.	समवेत प्राणायाम	५६
५.	सहित प्राणायाम	५७
६.	नाड़ीशोधन प्राणायाम	५७
७.	भ्रामरी प्राणायाम	५८
८.	उज्जायी प्राणायाम	५९
९.	शीतली प्राणायाम	५९
१०.	शीतकारी प्राणायाम	६०
११.	भस्त्रिका प्राणायाम	६०
१२.	केवली प्राणायाम	६१
१३.	प्लाविनी प्राणायाम	६२
१४.	चतुर्थ प्राणायाम	६२

३.	बन्ध	६३
१.	जालन्धर बन्ध	६३
२.	उड्डियान बन्ध	६४

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
३.	मूल बन्ध	६५
४.	महाबन्ध	६५
४.	मुद्रा	६६
१.	शाम्भवी मुद्रा	६६
२.	आकाशी मुद्रा	६७
३.	काकी मुद्रा	६७
४.	खेचरी मुद्रा	६८
५.	भुजंगिनी मुद्रा	६८
६.	महाबेध मुद्रा	६८
५.	हठयोग	७०
१.	नेति	७०
२.	धौति	७१
३.	नौलि	७२
४.	बस्ति	७२
५.	कपालभाति	७३
६.	त्राटक	७३

तृतीय खण्ड — ध्यान की प्रक्रिया

१.	ध्यान की प्रक्रियाएँ	७७
१.	अपने स्वरूप पर ध्यान	७७
२.	नाद संचालन या ऊँकार ध्वनि पर ध्यान	७८
३.	प्राण संचालन या श्वास पर ध्यान	७९
४.	शब्द संचालन	८०
५.	चक्रानुसंधान	८१
६.	चक्र भेदन	८१
२.	जपयोग	८३
१.	मन्त्र क्या है ?	८३

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
२.	पूर्व तैयारी	८४
३.	जप की विधियाँ	८६
४.	जप योग में माला की उपयोगिता	८७
३.	अजपाजप	८९
१.	प्रथम चरण	९३
२.	द्वितीय चरण	९४
३.	तृतीय चरण	९५
४.	चतुर्थ चरण	९५
५.	पंचम चरण	९६
६.	षष्ठ चरण	१००
४.	चिदाकाश विद्या	१०२
१.	प्रथम परिचय	१०२
२.	प्रतीक अभिव्यक्ति	१०२
३.	साधना समय	१०४
४.	स्नान का महत्त्व	१०४
५.	आध्यात्मिक प्रतीक	१०४
६.	यौगिक शरीर विज्ञान	१०६
७.	चिदाकाश का स्थान	१०६
८.	चिदाकाश धारणा का अभ्यास	१०७
५.	त्राटक	१०८
१.	चित्र पर त्राटक	१०९
२.	दीपक या मोमबत्ती पर त्राटक	१०९
३.	धूम्रपान पर त्राटक	११०
४.	नासिकाग्र पर त्राटक	११०
५.	नभोदृष्टि	११०
६.	स्वरूप पर त्राटक	१११
७.	शिवलिंग पर त्राटक	१११
८.	सूर्य पर त्राटक	१११
९.	चन्द्रमा पर त्राटक	११२
१०.	बिन्दु पर त्राटक	११२

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
११.	पान पर त्राटक	११२
१२.	तत्त्व आकार पर त्राटक	११३
१३.	छाया पर त्राटक	११३
१४.	यौगिक चक्रों पर त्राटक	११४
१५.	ज्योतिर्विन्दु पर त्राटक	११५
१६.	स्फटिक पर त्राटक	११५
६.	नादयोग	११८
७.	अन्तर्मौन—आन्तरिक नीरवता	१२२
१.	प्रथम चरण—विचारों का अन्तरवलोकन	१२२
२.	द्वितीय चरण—विचारों का व्यवस्थीकरण	१२५
३.	तृतीय चरण—विचारों की भ्रमपूर्ण अवस्था	१२७
८.	योगनिद्रा	१३१
१.	योगनिद्रा का अभ्यास	१३४
९.	आध्यात्मिक क्षेत्र और उसकी खोज	१३८
१.	खोज की प्रक्रिया	१४०
१०.	आत्म चैतन्य आत्मानुभूति योग	१४२
१.	अभ्यास	१४३
११.	चेतना का सम्बन्ध—अन्वेषण की विधि	१४६

प्रथम खण्ड

योग की व्याख्या

ਪੰਨਾ ੧੦੨
ਅੰਕ ੧੨

योग के नये क्षेत्र

सामान्य लोगों में योग के विषय में अत्यन्त अस्पष्ट एवं प्रायः विचित्र धारणायें हैं। परन्तु जिनको इस प्राचीन विज्ञान की कुछ जानकारी है तथा वे जो इससे व्यावहारिक रूप से जुड़े भी हैं उन्हें भी इस अत्यन्त स्पष्ट सत्य को समझने में प्रायः कठिनाई होती है। वस्तुतः इन अध्यायों में जो कुछ विचार दिये जा रहे हैं, वे नये लग सकते हैं और पहले के मान्य योग सिद्धान्तों को हिला भी दें सकते हैं।

आखिर ये नये विचार हैं क्या ? प्रथमतः, योग अभ्यास के लिए व्यक्ति को घर-बार छोड़ कर जंगल या एकान्त में जाने की जरूरत नहीं है। हम इस विचार को भी नहीं मानते हैं कि योगाभ्यास केवल संन्यासी, योगी या साधु ही कर सकते हैं। दूसरी बात, वैवाहिक जीवन या गृहस्थ जीवन योगाभ्यास में बाधक नहीं है। तीसरी बात, जो मांसाहार करते हैं उन्हें मांसाहार केवल इसलिए नहीं छोड़ना है कि वे योग का अभ्यास करना चाहते हैं। योग का वास्तविक लक्ष्य है अपने अन्दर में शान्ति एवं आनन्द का अनुभव करना। अतः इसका अभ्यास करने के लिए अपनी सामान्य जीवन-शैली को छोड़ने की जरूरत नहीं है।

जीवन के संघर्षों से पलायन मुक्ति का मार्ग नहीं है। जीवन का युद्धक्षेत्र काल्पनिक नहीं है। दार्शनिकों को ऐसा लग सकता है, वे कल्पनालोक में रहते हैं, वे धरती पर चलते भी नहीं हैं। योग व्यावहारिक है और इसे दार्शनिक उड़ानों और कल्पनाओं से अधिक कुछ लेना देना नहीं है। ऐसा कदापि नहीं समझिये कि गृहस्थ का जीवन संन्यासी के जीवन से निम्न है। स्त्रियों को भी यह कभी सोचना नहीं चाहिए कि उनका स्थान पुरुषों से किसी प्रकार कम है।

आज की दुनिया में योग की विशेष भूमिका है। केवल इसके अभ्यास से शारीरिक एवं मानसिक दुःख दूर हो सकते हैं। यह हमारे घरों में खुशियाँ ला सकता है। योग आत्मानुशासन एवं व्यवहार की असाधारण शक्तें नहीं लगाता है। जीवन के सुखों का भोग करते हुए भी व्यक्ति योगी हो सकता है। योगाधारित जीवन के लिए अपनी सांसारिक महत्त्वाकांक्षायें और भौतिक इच्छाओं को छोड़ना आवश्यक नहीं है। हाँ, साथ ही व्यक्ति को अपनी वासनाओं का दास भी नहीं होना है।

योग के नियमित अभ्यासी को सागर के समान शान्त रहना है, जिसमें अनेक तीव्रगामी नदियाँ मिलती हैं, पर वह उनसे क्षुब्ध नहीं होता है। इन्द्रिय-सुख का आनन्द लेता हुआ योगी इतना सतर्क अवश्य रहता है कि इन्द्रियाँ उसके ऊपर हावी न हो जायें। यह जीवन से घृणा करना नहीं सीखता। जंगल में जाकर एकान्त समाधि में बैठने का आनन्द लेना कोई पुण्य कार्य नहीं है। जीवन के हलचल में भी अडिग खड़े रहना शूरता है, विशेष रूप से उस समय जब सभी चीजें हमारे विपरीत जा रही हों। विषमताओं के मध्य सन्तुलन प्राप्त करना ही समाधि है।

जो डाक्टर चाहे कि सभी स्वस्थ व्यक्ति ही उसके दवाखाने में आवें तो वह डाक्टर नहीं हो सकता है। उसी प्रकार यदि शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति पर ही योग का चमत्कार प्रकट हो सकता है तब वह जीवन का अपूर्व विज्ञान नहीं है। तब तो इसका क्षेत्र अत्यन्त सीमित हो जायेगा। एक अत्यन्त विवेकपूर्ण विज्ञान होने के कारण यह जीवन की किसी भी परिस्थिति में, किसी भी व्यक्ति को लाभ दे सकता है। दिनभर की भाग-दौड़ एवं परिश्रम के पश्चात् यह व्यक्ति में पुनः समुत्थान शक्ति, ऊर्जा एवं सन्तुलन ला सकता है।

(सांसारिक मनुष्य का जीवन एक अनवरत यज्ञ है। घर के चूल्हे को जलता रखने, अपने सामाजिक, राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय दायित्वों को पूरा करने के निमित्त किये गये कार्य उस यज्ञ की आहुतियाँ हैं। एक बार यह सत्य समझ में आ जाय तो अपने जीवन की स्थिति के अनुसार अहर्निश कठिन श्रम के मध्य भी व्यक्ति के जीवन में आत्म-साक्षात्कार की ज्योति जलायी जा सकती है।)

जीवन के संघर्ष में चल रहा अनवरत कार्यकलाप अपना प्रभाव डालता ही है। चिन्ता, निराशा, शरीर और मन की थकान सभी मिलकर वार्द्धक्य की गति ही तीव्र करते हैं। इन विनाशकारी शक्तियों के समक्ष योग एक सशक्त उपाय है।

(योगाभ्यास के लिए आजीवन ब्रह्मचर्य पालन की अनिवार्यता, क्या आत्मोन्नयनकारी योग विज्ञान के सम्बन्ध में प्राचीन ऋषियों ने जो कहा है उसके विरोध में है? उत्तर है नहीं) उम्र योग साधना में बाधक नहीं है। चाहे व्यक्ति जीवन में प्रवेश कर रहा हो, अपनी युवावस्था में हो या जीवन के आखिरी मुकाम की ओर अग्रसर हो, वह योग-अभ्यास सीख सकता है, कर सकता है। योगाभ्यास में उम्र की सीमा नहीं है।

(भारतीय शास्त्रों में वर्णित अष्टांग योग ही एक मात्र योग नहीं है। आसन, प्राणायाम, जप, नादयोग, त्राटक, के नियमित अभ्यास भी उतने ही प्रभावशाली हैं। कर्मयोग, भक्तियोग, राजयोग, ज्ञानयोग योग के विभिन्न पक्ष हैं। संगीत

का, जो भक्तियोग का आवश्यक अंग है, दबी भावनाओं और ज्वराक्रान्त मन पर शान्तिप्रद प्रभाव होता है। इतनी दूर क्यों जाएँ ? जीवन ही योग है। हमारे दैनिक कर्म ही योग हैं। क्षेत्र विशाल और आकर्षक है। आइये योग के स्पन्द एवं रोमांच के द्वारा अपने जीवन के सभी क्रियाशीलों को रूपान्तरित होने दें।

जीवन के जालों और फन्दों में पड़कर व्यक्ति वास्तविकता से आँखें बन्द नहीं कर सकता। पतंजलि के यम और नियम एक काल विशेष के लिए थे। कठोर सत्य यही है कि यम और नियम की यदि पूर्व काल की व्याख्या को ही लें, तो आज के युग में उनका कोई स्थान नहीं रह जाता है। प्राचीन काल में जिस हवा में हमारे पुरखे श्वास लेते थे वह नैतिकता से पूर्ण थी। आज की दूषित हवा असत्य, हिंसा और अनगिनत बुराईयों से भर गई है। सत्य, अहिंसा आदि निश्चित रूप से अधिक सामर्थ्यपूर्ण शक्तियाँ हैं, परन्तु वैसा तभी हो सकता है जब आन्तरिक प्रेरणा के वशीभूत हो उनका अभ्यास किया जाय। योग असंभव सद्गुणों को उत्पन्न करने में रुचि नहीं लेता। अच्छा हो उन्हें नैतिक लोगों के लिए ही छोड़ दें। योग एक विवेकपूर्ण विज्ञान है, जिसमें उधमी मन को शान्त करने, शारीरिक एवं मानसिक ऊर्जाओं का उपयोग करने और उनमें लचीलापन बनाये रखने की विधियाँ हैं। संक्षेप में योग का लक्ष्य है समन्वित व्यक्तित्व का विकास (इसका सुन्दर उपाय है भक्ति, कर्म, ज्ञान एवं राजयोग का संयोग)। मनुष्य को केवल पूर्ण बुद्धि ही नहीं होना है, और न उसे केवल पूर्ण भावना ही बनना है। दोनों का सुखद संयोग होना चाहिए, अन्यथा जीवन में शान्ति नहीं रह पायेगी।

(योग शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह संस्कृत के युज् धातु से बना है, जिसका अर्थ होता है जोड़ना, मिलाना। योग का अर्थ है जुड़ना, एकात्मता। सबके सुख दुःख से जुड़ना, अपने हृदय को उदार बनाओ और जीवन-की क्षुब्धताओं को छोड़ो।) योग (को यदि इस अर्थ में लें तो यह व्यक्तिपरक नहीं रह जाता। जैसे माता और संतान में भावनात्मक एकात्मता रहती है उसी प्रकार अपने परिवेश के साथ भावनात्मक एकात्मता विकसित कीजिए।)

{योग शारीरिक और मानसिक उत्थान के लिए है, दुःखी मानवता के लिए यह मनोदैहिक चिकित्सा पद्धति के रूप में एक आशीष है, वरदान है। सत्य के खोजने वालों के लिए ईश्वरानुभूति की सीधी राह है। वस्तुतः योग पूर्णता की योजना है। आप इसे एक कार्यक्रम, एक विधि या एक दर्शन के रूप में ले सकते हैं। कार्यक्रम के रूप में यह निश्चित उद्देश्य और प्रयोजन से की जाने वाली यात्रा है। विधि इस अर्थ में है कि योगाभ्यास शुद्ध एवं सुव्यवस्थित है। मनुष्य की आध्यात्मिक दिशा जो भी हो, ध्यान आदि के अभ्यास सदा ही उपयोगी हैं। अतः योग एक सार्वभौम नुस्खा है और वस्तुतः आत्म साक्षात्कार का राज-मार्ग है।}

मनुष्य बड़े ऊँचें संकल्प करते हैं, वे आत्म साक्षात्कार चाहते हैं, वे उच्चादर्शों का पालन करना चाहते हैं। परन्तु एक ही फन्दा है, उनमें संकल्पशक्ति का अभाव है। संकल्प शक्ति के अभाव में न भौतिक उत्थान संभव है और न आध्यात्मिक। एक खण्डित व्यक्तित्व का विकास न करें—बाहर में संकल्प शक्ति का प्रदर्शन और अकेले में अपनी कमजोरियों की दलाली। वास्तविकता और आदर्श का द्वन्द्व।

क्या आपको सुखी और समस्वरित जीवन अच्छा लगता है ? क्या अपने दैनिक कार्य-कलाप में उत्साह से भरे रहते हैं ? जब प्रतिकूल परिस्थितियाँ आपको झकझोर देती हैं, तब क्या आप शान्त मन और एक सहज भाव से अपना सिर ऊँचा रख पाते हैं ? यदि नहीं, तो फिर योग की शरण में आइये।

योग शरण आइये

योग और शारीरिक स्वास्थ्य

योग का मनोदैहिक पक्ष अति महत्त्वपूर्ण है। यह प्राचीन विज्ञान मानव को मात्र एक जैव इकाई नहीं मानता। इस प्राचीन विज्ञान के चिन्तकों ने मन के कार्य और उसकी आंतरिक संरचना पर अधिक ध्यान दिया है। आज, मनोविज्ञान ने अपने शोधात्मक परिक्षेत्र में इस मौलिक पक्ष को स्वीकार किया है और शरीर और मन के अन्तर्सम्बन्धों को अधिक से अधिक समझा है।

यह एक अनिवार्यता होती जा रही है कि किसी भी कार्य-क्षेत्र में मनुष्य की प्रगति के लिए न केवल उसको शारीरिक रूप से स्वस्थ होना चाहिए वरन् उसका मानसिक रूप से स्वस्थ होना भी अनिवार्य है। योग के क्षेत्र में मानव के उच्चतर प्रगति के लिए उसके स्वस्थ और समन्वित व्यक्तित्व के विकास को योग ने सदा ही अपना लक्ष्य माना है। अतः इसमें कोई आश्चर्य नहीं होता जब महर्षि पतंजलि अपने अष्टांग योग पद्धति में दोनों-पक्षों बहिरंग और अन्तरंग-को योग की पूर्णता के लिए आवश्यक मानते हैं। प्रथम कोटि में आते हैं यम, नियम, आसन और प्राणायाम, तथा द्वितीय कोटि में आते हैं प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

प्रथम चार शारीरिक स्वास्थ्य के मौलिक तत्त्व हैं। यम नियम आसन और प्राणायाम सबके शारीरिक स्वास्थ्य के चार आधार स्तम्भ हैं। फिर हठयोग छः शुद्धि तकनीकों, नेति, धौति, बस्ति, नौली, त्राटक और कपालभाति को षट्कर्म के रूप में रखता है। ये सभी शारीरिक स्वास्थ्य की महत्वपूर्ण तकनीकें हैं। प्राचीन योग विज्ञान ने मेरुरज्जू और मस्तिष्क को केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र के अवयव के रूप में माना है तथा उनको स्वस्थ रखने पर बल देता है। योग अन्तःस्रावी ग्रन्थियों की समुचित क्रियाशीलता और शरीर की रासायनिक प्रक्रियाओं को भी महत्त्वपूर्ण मानता है। अतएव साधक प्रसन्नता से अपने जीवन में स्वेच्छिक परिवर्तन के लिए तैयार हो जाता है। पर ऐसा नहीं है कि उस समय वह अपने जीवन की मौलिक आवश्यकताओं को अस्वीकार कर दे। अपनी सहज इच्छाओं का दमन करें। परन्तु एक उच्च प्रयोजन हेतु अपनी इच्छाओं, प्रेरणाओं के रूपान्तरण हेतु कठोर एवं नियमित प्रयास करे।

अतः शरीर को स्वस्थ एवं चुस्त-दुरुस्त रखने के लिए आसन, प्राणायाम और मुद्रा आवश्यक विधियाँ हैं। ये ही स्वास्थ्य के मुख्य आधार हैं, क्योंकि योग

में लम्बे काल तक बैठकर भी अभ्यास करना होता है। आसन केवल शारीरिक व्यायाम नहीं है, जो मांसपेशियों को प्रभावित करता है। योग में पेशीय बल को अधिक महत्त्व नहीं देते और शरीर एक यंत्र भी नहीं है।

योगाभ्यास में थकावट, परिक्रान्ति, आलस्य आदि से बचते हैं। प्रयास तो रहता है कि मन सदा प्रसन्न रहे। आसन वह तकनीक है जिसका अभ्यास प्रतिदिन किया जाता है जो समस्त मानवतन्त्र को स्फूर्ति एवं पुनर्जीवन प्रदान करता है।

केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र ऊर्जा का भंडार है। शरीर में उपकेन्द्र भी हैं जो निष्क्रिय हैं और उन्हें सक्रिय करने की आवश्यकता है। आसन इसमें बहुत हद तक मदद करता है। आसन चौरासी कहे जाते हैं, पर उनमें मुख्य कुछ ही हैं। पीछे झुकने वाले आसन, जैसे—भुजंगासन, शलभासन, और धनुरासन; आगे झुकने वाले आसन, जैसे—हलासन, और पश्चिमोत्तान आसन; मुड़ने वाले आसन, जैसे अर्ध मत्स्येन्द्रासन; विपरीत आसन, जैसे—शीर्षासन, ये सभी मेरुदण्ड लचीला रखते हैं। चौदह प्रमुख नाड़ियों में इडा, पिंगला और सुषुम्ना मुख्य हैं। आसन मेरुदण्ड को लचीला और स्वस्थ रखते हैं जिसके कारण साधक अतीन्द्रिय पथ से होकर अपनी संचित ऊर्जा को उन्मुक्त कर सकते हैं।

ऊपर में अंकित षट्कर्म केवल आन्तरिक अंगों को शुद्ध रखने में सहायक होता है। केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र ही केवल महत्त्वपूर्ण नहीं है। शरीर में अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियाँ, जैसे—पीनियल, पीयूष, चुल्लिका, उप-चुल्लिका, थाइमस आदि भी हैं। इनसे हारमोन निकलता है, जो सीधे रक्त प्रवाह में जाता है। अतः यह आवश्यक है कि इन्हें समुचित रूप से क्रियाशील रखा जाय, क्योंकि वे न केवल स्थूल शरीर-संरचना के विकास में योगदान देते हैं, वरन् सूक्ष्म क्षेत्र में भी प्रवेश करते हैं। मुद्राएँ स्वाभाविक अभ्यास हैं, जो ग्रन्थियों और आन्तरिक अंगों को पुनःअनुप्राणित करते हैं। ये मुद्राएँ हैं—योग मुद्रा, महामुद्रा, महाभेदमुद्रा आदि। ये मुद्राएँ शारीरिक स्वास्थ्य के लिए योग की आवश्यक विधियाँ हैं।

तीसरी महत्त्वपूर्ण विधि है प्राणायाम। इसके दो पार्श्व प्रभाव होते हैं। यह शरीर यन्त्र को शुद्ध एवं स्वस्थ रखने में मदद देता है, तथा मनुष्य के मनो-भावानामक अस्तित्व को नियंत्रित, व्यवस्थित और निर्देशित करता है। प्राणायाम का अर्थ है नियंत्रित, लयबद्ध, व्यवस्थित श्वसन। प्राण भौतिक शरीर में सार्वभौम ब्रह्माण्डीय ऊर्जा की स्थूल अभिव्यक्ति है। ब्रह्माण्डीय ऊर्जा सभी प्राणियों को जीवन प्रदान करती है। प्राणायाम इसी जीवनी शक्ति के संरक्षण एवं वितरण की तकनीक है।

श्वास लेते समय श्वसन तन्त्र ऑक्सीजन लेता है और श्वास छोड़ते समय कार्बन-डाईऑक्साइड छोड़ता है। तन्त्र का ऑक्सीकरण शरीर को शुद्ध हल्का और सक्रिय बनाता है। जब तक श्वसन प्रक्रिया को समुचित रूप से समझा

और सही ढंग अभ्यास नहीं किया जायगा तब तक श्वसन में असन्तुलन की संभावना रहेगी। जिसके फलस्वरूप विभिन्न प्रकार के भावनात्मक द्वन्द्व एवं उत्तेजनाएँ आती हैं। असंख्य सुख-दुःख से भरा संसार हम पर भीषण आक्रमण करता है, और हम जीवन में यथार्थ समायोजन पाने में असमर्थ हो जाते हैं। मनुष्य पर प्राण के प्रभाव का और मन और शरीर में सह-सन्बन्ध का ज्ञान योग द्वारा होता है।

अतः योग के पास शारीरिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में देने के लिए काफी कुछ है तथा उसकी प्रभावशाली एवं वैज्ञानिक भूमिका है।

योग और मन

मन शरीर का बड़ा रहस्यात्मक अवयव है। यह सुख और दुःख दोनों का कारण है। *मन एव मनुष्याणां कारणं मोक्षबन्धयोः*। इस ज्ञान के होते हुए भी दार्शनिक और ऋषि इसका उपयोग करने में असमर्थ रहे हैं। मन वह सेवक है जो समस्त सूचनाएँ प्राप्त करता है एवं उनका उपयोग करता है। यह विभिन्न भूमिकाओं में कार्य करता है। स्वचालित प्रतिवर्त क्रियाएँ और सुचिन्तित धैर्य दोनों ही मानसिक तरंगों द्वारा तीक्ष्ण बनते हैं। जब तक हम तन्त्रिका विज्ञान और कपाल विज्ञान सम्बन्धी शोधों पर विचार नहीं करेंगे तब तक मन पकड़ा नहीं जा सकता।

अतीतकाल के ऋषियों द्वारा प्रतिपादित प्राचीन योग-विज्ञान मन के उपयोग की प्रक्रिया हमें बताता है। शापेनहावर ने एक बार लिखा था कि “हमारी इच्छायें अनन्त हैं और उनके समाधान सीमित हैं। इच्छाओं में पकड़ने की शक्ति तो अधिक हैं पर योग्यता कम है। सुखी जीवन की एक शर्त है, अपनी इच्छायें और आवश्यकताएँ न्यूनतम हों।” इच्छायें सगर्भा होती हैं, एक इच्छा से दूसरी इच्छा का जन्म होता है और यह प्रक्रिया अनवरत चलती रहती है। यह सत्य है। पूर्व के हमारे सन्त और दार्शनिक युगों से यही कह रहे हैं— *मन एव मनुष्याणां कारणं मोक्षबन्धयोः*। जो मन पर विजय प्राप्त कर लेता है वह सुख दुःख से ऊपर उठ जाता है।

मन पर विजय कैसे प्राप्त करें ? हम मानते हैं कि ऐसा केवल योग के द्वारा संभव है। इस पृथ्वी के बाहर कहीं शान्ति या मोक्ष नहीं है, सही मानसिक अनुशासन के द्वारा इसे अभी और यहीं प्राप्त किया जा सकता है। योग के अद्वितीय ग्रन्थ श्रीमद्भगवत् गीता में भगवान् कृष्ण ने अर्जुन से कहा— *“मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय। निवसिष्यसि मय्येव अंत उर्ध्वं न संशयः”* इसके उपरान्त तू मुझमें ही निवास करेगा इसमें कुछ भी संशय नहीं है। इस प्रकार भगवान् ने कहा है कि अपने मानसिक व्यक्तित्व को ईश्वरीय व्यक्तित्व में मिला दो।

परमात्मा की प्राप्ति हेतु मन की सनक को तो रोकना ही होगा। मन पूर्णरूपेण शान्त एवं नीरव होना चाहिए। तभी ध्यान के गहरे क्षणों में आत्मा का प्रकाश

अवतरित होता है। सरल शब्दों में, आत्मा या परम चेतना की अनुभूति के लिए एक ही रास्ता है—ध्यान, चिन्तन।

ध्यान अथवा मन का नियंत्रण कठिन कार्य है। फिर भी दृढ़ संकल्प और अविरल अभ्यास ही सफलता का राजमार्ग है। अब एक या दो दिन में तो ध्यान सिद्ध नहीं हो सकता। साधक को प्रारंभिक असफलताओं से निराश नहीं होना चाहिए, जब तक लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो साधक को अपनी साधना में अनवरत लगे रहना चाहिए।

ध्यान, पूर्ण या अपूर्ण सबकी आवश्यकता है। क्यों ? मन एक झील के समान है, हल्की हवा भी उसकी सतह को आन्दोलित कर देती है। अविरल विचार तरंगें तनाव उत्पन्न करती हैं, जो वास्तव्य को आमंत्रित करती है। यह बुढ़ापा कम ही समय में शक्ति का हास कर देता है। आदमी केवल बोटल भर रक्त, हड्डियों का गूठर और मांस का ढेर नहीं है। उसमें रुचियाँ और अरुचियाँ हैं, भाव है, विश्वास है, भावनायें हैं। पलने से लेकर चिता तक वह सुखद और दुःखद अनुभवों से अपने जीवन की झोली भरता जाता है। इस प्रकार उसका मन संवेदनाओं, बोधों और धारणाओं का कूड़ा घर हो जाता है। ये सब उसकी दिव्य प्रकृति को पराजित कर देते हैं।

अगर ये अनुभव एक जन्म के होते तो मन के इन संस्कारों को धो डालना आसान था, उसे पुनः कोरा कागज बनाया जा सकता था। परन्तु मनुष्य तो विगत जन्मों के कर्मों को भोगने हेतु पुनर्जन्म लेता रहता है, उसके पास तो अनादि वासनाओं का अक्षय भंडार रहता है जिन्हें संस्कार और पूर्व जन्मों का अनुभव कह सकते हैं। ये सब उसकी परम चेतना को आच्छादित कर देते हैं और उन्हें साफ करना, अंगले जन्म के लिए उसका कार्य हो जाता है।

साधक को अपने वर्तमान और पूर्व जन्मों के संस्कारों से निबटना पड़ता है। साधक तो वही है जो जीवन के आसक्ति-पूर्ण मार्गों का यात्री रहा है, जहाँ उसका ध्यान इन्द्रिय भोग करने में ही लगा रहा है, पर उसने समझ लिया है कि वासनाओं का अन्त नहीं है। अब वह उन्हें छोड़कर लौटने की डगर पर चल पड़ा है।

राजयोग योग की ही एक शाखा है, जिसने शारीरिक मानसिक एवं आध्यात्मिक प्रस्फुटन की विधियों को खोजा है। ध्यान अचेतन मन में छिपे अव्यक्त और दमित भावनाओं को रिक्त करने की प्रक्रिया भी हैं। यदि इन दमित वासनाओं और भावनाओं को नहीं उखाड़ फेंका गया, तो वे व्यक्तित्व-दोषों, शारीरिक और मानसिक व्याधियों, यथा मनोस्नायु विकृति, मनोविकृति और उच्च रक्तचाप आदि के रूप में प्रकट होंगी। जिस व्यक्ति ने अपनी भावनाओं पर संवेदनाओं पर अधिकार प्राप्त कर लिया है, तथा क्षुद्र वासनाओं से ऊपर उठ गया है वह कभी अस्वस्थ नहीं हो सकता, जब तक उसके मृत्यु का ही समय न आ गया हो।

अल्प काल का भी ध्यान मनुष्य के लिए टॉनिक है, स्फूर्तिदायक है। धारणा के अभ्यास के समय मन विश्रान्ति का अनुभव करता है। ध्यान में मन को बार-बार एक ही विषय पर लगाये रखने का सतत प्रयास मन की ऊर्जा को नष्ट होने बचाता है। एक विचार से दूसरे विचार पर स्थानान्तरित होने और भिन्न-भिन्न आवृत्तियों की तरंगें उत्पन्न करने के बदले यह मन एक ही विषय पर चक्कर लगाता रहता है और फलस्वरूप समान आवृत्ति की तरंगें उत्पन्न करता है। ध्यान की यह साधना मानसिक ऊर्जा में मितव्ययिता लाती है। यह कारण शरीर को शान्त एवं नियंत्रित करता है। लयबद्ध स्पन्दन उत्पन्न होते हैं, जो शरीर और मन दोनों को शान्त करते हैं। ध्यान मन की तेजस्विता को वापस लाता है तथा दिन भर के निरर्थक और लक्ष्यहीन चिन्ता और दुःखद विचारों के कारण हुई क्षति की पूर्ति करता है।

इस प्रकार ध्यान अतीत के संस्कारों को साफ करने और उसके साथ ही नये संस्कार का निर्माण नहीं होने देने में सहायक होता है। संसार में मिलने वाले दुःखद आघातों से सुरक्षा हेतु यह एक उपयोगी रणनीति के रूप में काम करता है। जीवन तो एक संघर्ष है जिसमें मन के साथ-साथ शरीर की शक्ति से ही विजय प्राप्त किया जा सकता है। योग एक जलती भट्ठी है जो मन और शरीर को एक नया स्वरूप देती है, तथा उसे संसार के उपद्रवों और आँधियों का सामना करने की शक्ति देती है। प्रत्येक व्यक्ति को साहस और धैर्य के साथ जीवन समुद्र को पार करना है। योग निश्चित रूप से मन को नियंत्रित करने एवं अपने को साहस और संकल्प से समृद्ध करने की विधियाँ प्रस्तुत करता है, जिससे व्यक्ति जीवन का सफलता पूर्वक सामना करते हुए अपनी मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करे।

यह सर्वमान्य तथ्य है कि मन एवं शरीर अन्योन्य रूप से परस्पर क्रिया करते हैं। मानसिक व्याधियों से शारीरिक रोग उत्पन्न होते हैं तथा इसके विपरीत भी होता है। हम अपनी इन्द्रियों को स्थूल तुष्टि हेतु इधर-उधर भटकने देते हैं। हम अपने शरीर से अत्यधिक तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं, जिससे मनोस्नायु रोग और निराशा उत्पन्न होती है। हमारे व्यक्तित्व के पुनर्निर्माण के उपाय योग प्रदान करता है। मन को उसके विषयों से हटाता है, और मनोवैज्ञानिकों की मध्य-कक्षा अवचेतन में चला जाता है। जब हम ध्यान के द्वारा अपने अवचेतन से सम्पर्क स्थापित करते हैं तब गहराई में स्थित हमारे संस्कार एक-एक कर ऊपर सतह पर आते हैं तथा धीरे-धीरे, पर निश्चित रूप से विदा ले लेते हैं। यह विधि पूर्णतया आधुनिक मनोचिकित्सीय अभ्यासों के अनुरूप है। अन्तर इतना ही है कि यहाँ अपने मनोचिकित्सक हम स्वयं होते हैं।

आधुनिक सभ्यता ने आदमी को असामान्य बना डाला है। वह शारीरिक और मानसिक रूप से अस्वस्थ है। वह पीड़ा को पकड़ता है और विषादमय विचारों

में उलझा रहता है। दवा थोड़ी राहत भले दे दे, निरोग तो नहीं ही कर पाती है। केवल गहरे ध्यान के द्वारा हम मानसिक, शारीरिक और भावनात्मक तनावों से मुक्ति पा सकते हैं और अपने को आक्रान्त करने वाले रोगों को विदा कर सकते हैं।

ध्यान के उद्देश्य

ध्यान आम साक्षात्कार का मार्ग है। पर यदि आप यह करने बैठ जाएँ, तो बड़ा कठिन प्रतीत होगा। अनेक समस्यायें सामने आयेंगी। ध्यान किया कैसे जाय यह आपकी प्रथम समस्या हो सकती है। इसमें रुचि वाले लोग भी सामान्यतया इसकी विधियों से प्रायः अनभिज्ञ रहते हैं। शरीर-चेतना को भूल पाना और लम्बे समय तक एक वांछित विषय पर मन को लगाये रखना आसान नहीं है। मन पर अधिकार एक दिन में नहीं हो सकता। कोई भी शिक्षण संस्था नामांकन के दिन ही योग्यता प्रमाण-पत्र तो नहीं दे देती। ध्यान के क्षेत्र में कुछ उपलब्धि में समय लगता है।

ध्यान एक बड़ा अस्पष्ट शब्द है जिससे नये नये साधक को कोई अनुमान नहीं लगता। ध्यान मानसिक अनुशासन का एक अभ्यास है। मन को वांछित लक्ष्य की दिशा में अनुशासित एवं निर्देशित करना है। मन को अनुशासित करने का यह स्वानुभूतिमूलक तरीका है। मन की सनक को नियंत्रित करने का यह उपाय है। विभिन्न भावनाओं, परेशानियों, चिन्ताओं, अनिर्णयों आदि के कारण द्वन्द्व ग्रस्त व्यक्ति ध्यान के अभ्यास से काफी लाभान्वित होते हैं। यह आत्मावलोकन का अवसर प्रदान करता है, तथा अन्तरात्मा की व्याधि को दूर करता है। आज का आदमी दिन भर बहिर्मुखी ही रहता है। अपने अन्दर में देखने के लिए उसे समय ही नहीं मिल पाता, जो अत्यन्त आवश्यक है। व्यस्ततम व्यक्ति को अपने शरीर की सुश्रुषा के लिए समय खोजना पड़ता है। इसी प्रकार आपकी अन्तरात्मा प्रतिदिन थोड़ा समय चाहती है। यदि आपके भौतिक शरीर को, शौच, स्नान, भोजन और वस्त्रों की आवश्यकता हो सकती है तो क्या आपका मनोशरीर कुछ भावात्मक आवश्यकतायें नहीं अनुभव कर सकता है ? एक क्षण के भी विश्राम लिए बिना आपका मन जीवन के तनाव और संघर्ष का सामना करता रहता है। अतः उसे भी सुचिन्तित देख-भाल की आवश्यकता है। यंत्रों को भी काम के उपरान्त कुछ समय विश्राम दिया जाता है। क्या आप योग की विश्रान्ति एवं पुनर्जीवनप्रदायी विधियों के अतिरिक्त किसी एक भी विधि का नाम ले सकते हैं, जो तन्त्रिकाओं के तनाव दूर कर उन्हें आराम दे सकती है ? विचारों के एकत्रित कचरे को साफ करने के लिए ध्यान के अतिरिक्त और कोई अन्य विधि नहीं है।

तन्त्रिका-तन्त्र के रोगों, या उनके कार्यों में गड़बड़ी, यथा-स्नायुमनोविकार, मनःश्रान्ति (न्यूरेस्थेनिया) आदि का ध्यान द्वारा उपचार किया जा सकता है। व्यावहारिक ध्यान चिकित्सा कार्य में भी योगदान दे सकता है। जो लोग पागल नहीं हैं, उनमें उत्पन्न होनेवाले रोग, यथा-स्नायुमनोविकार (साइको न्यूरोसिस) का सफल उपचार ध्यान के द्वारा किया जा सकता है, अनेक रोगों की रोकथाम ही नहीं, उनके सफल उपचार में भी ध्यान उपयोगी है। मनोरोग तो दूर किये ही जा सकते हैं।

ध्यान अन्तरात्मा को जागृत करता है, ध्यान द्वारा मन की अन्तर्निहित, अप्रयुक्त क्षमताओं, या मस्तिष्क केन्द्रों को जागृत किया जा सकता है। यदि मन विगत अनुभवों की स्मृतियों से थोड़े क्षण के लिए भी मुक्त है, यदि वह पूर्णतया तनाव रहित है और एकाग्र है, तब उसकी ऊर्जा को अज्ञात, अदृश्य, और अश्रुत क्षेत्रों की खोज की ओर निर्देशित किया जा सकता है। एकाग्र मन के सूक्ष्म विश्लेषण द्वारा कुछ अतिन्द्रिय ज्ञान भी प्राप्त हो सकता है। मन एक समस्या को ले, उस पर घंटों, दिनों, महीनों और वर्षों तक चिन्तन करता रहे तो उसे नयी रोशनी मिलती है, नयी राह मिलती है, और समस्याओं का समाधान प्राप्त होता है। यही महान वैज्ञानिकों ने समझा है और प्राप्त किया है। गहन, एकाग्र और संकेन्द्रित ध्यान ज्ञान अथवा जीवन के नये परिदृश्यों को खोलता है।

अभी भी मन के सभी उतार चढ़ाव मनुष्य को अवगत नहीं हैं। महान वैज्ञानिकों ने भी स्वीकार किया है कि अन्तिम सत्य का अभी तक पता नहीं है। ध्यान के द्वारा अनेक रोग, जैसे—उच्च रक्तचाप, दर्द आदि भी दूर किये जा सकते हैं। इसके उपचारात्मक पक्ष पर ऊपर भी चर्चा की गयी है।

महान मनोवैज्ञानिक फ्रायड ने भी कहा है कि शारीरिक स्तर पर व्यक्त होने वाली घटनायें भी अवचेतन मन की ही अभिव्यक्तियाँ हैं। यदि यह सत्य है तो फिर सारे दुःख, रोग, और व्याधियों के मूल में फ्रायड का “ईड” ही है। प्राचीन काल के भारतीय मनोवैज्ञानिक भी इस विचार से सहमत हैं, उनकी शब्दावली भले ही भिन्न हो। फ्रायड का “ईड”, “चित्त” की ही झलक है, जो समस्त वासनाओं और आद्य मूल-वृत्तियों का भंडार है। सारी व्याधियाँ मन से ही प्रारम्भ होती हैं। मात्र यह भाव ही कि “मुझे सदी हो सकती है, मुझे अमुक बिमारी हो जा सकती है” शरीर को रोगाणुओं के स्वागत के लिए तैयार कर देता है। ध्यान संकल्प शक्ति को विकसित करता है, और मन को गलत भावों, भयों और सनकों से मुक्त कर सकता है।

उदाहरणस्वरूप, यह तर्क दिया जा सकता है कि बच्चा, जिसका विचार परिपक्व नहीं है, रोगाक्रान्त क्यों हो जाता है? प्रयोगों ने प्रमाणित किया है कि बच्चा केवल एक मनोवैज्ञानिक प्राणी है। कम उम्र के बच्चे में भी स्वाद,

तथा अपने परिवेश, और वातावरण के प्रति संवेदनशीलता विकसित रहती है। यह अलग बात है कि बच्चे ने अभिव्यक्ति की कला सीखी है या नहीं। बच्चा अभिव्यक्ति भले ही न करे, अनुभव तो करता ही है। बच्चों के व्यवहारों के गहन अध्ययन ने प्रमाणित कर दिया गया है कि वह सयाने लोगों की अपेक्षा अधिक संवेदनशील होता है। बच्चे सहज ज्ञान से प्रेम, क्रोध, और घृणा आदि को समझ जाते हैं। वे रोग से प्रभावित हो जाते हैं क्योंकि उनके शरीर और मन दोनों ही शैशवावस्था में हैं। शारीरिक एवं मानसिक प्रौढ़ता आने के पश्चात् वे मानसिक रूप से रोगाणुओं का प्रतिरोध करना सीख जायेंगे।

ध्यान की परिणति समाधि है, मानव मन के विकास की चरमावस्था। धारणा, चिन्तन एवं ध्यान के द्वारा व्यक्ति मन की सीमाओं को अतिक्रमित कर जाता है। मन और शरीर दो कांटे हैं जो मनुष्य की आत्मा में चुभते हैं और दुःख एवं पीड़ा देते हैं। यदि मन और शरीर दोनों का अन्त हो जाय तो न दुःख रह जाय, न पीड़ा रह जाय, न शोक रह जाय, न अज्ञान रह जाय। आत्मा की शक्ति को कोई सीमित न कर पाये। पिंजड़े से निकली चिड़िया अनन्त आकाश में उड़ान भर सकती है। उसी प्रकार जब चेतना या आत्मा मन और शरीर की सीमाओं को अतिक्रमित कर जाती है, उसे परमानन्द परमशक्ति और परम ज्योति की प्राप्ति होती है। यह कहना गलत होगा कि उसे प्राप्ति होती है। अधिक सही तो होगा कि कोई द्वैत नहीं रह जायेगा, द्विविध चेतना—ज्ञाता और ज्ञेय नहीं रह जायेगा। चेतना एक हो जायेगी, वह परम चेतना या ब्रह्माण्डीय चेतना का ही रूप हो जायेगी।

बाह्य विषयों और वासनाओं से अनासक्ति की साधना द्वारा यदि निष्ठापूर्वक अभ्यास किया जाय और मन को अतीन्द्रिय विषयों की ओर मोड़ने में सफलता मिल जाय तो जीवन की क्षुद्र घटनाओं से प्रतिक्रिया करने की जन्म जन्मातरों की आदत छूट जाय।

समाधि

योग साधना की परिणति

अग्रतम विस्मृति, हर्षोन्माद या चेतना-स्थगन समाधि नहीं है। समाधि लोकोत्तर समचित्तता है।

समाधि के विषय में अनेक गलत धारणाएँ हैं। कुछ लोगों के अनुसार समाधि की अवस्था में व्यक्ति का शरीर पत्थर की तरह कठोर हो जाता है, नाड़ी गति मन्द हो जाती है, चपापचय क्रिया रुक जाती है। स्थगित प्राण-संचरण उच्च विज्ञान है जो कुछ योगियों को सिद्ध होता है, पर वह भी समाधि नहीं है। स्थगित प्राण संचरण की अवस्था में चेतना या ज्ञान नहीं रहता। अवचेतन तत्त्वों का भंडार या अवचेतन भंडार प्रसुप्त रह जाता है। यदि समाधि का अर्थ स्थिर आसन और पूर्ण अचेतनता है तो शायद बहुत कम ही साधक इसे प्राप्त करने में सफल हो सकते हैं। जो व्यक्ति चेतन और अवचेतन शक्तियों को प्रसुप्त रख सकता है वह प्रशंसनीय है, परन्तु इसका योग से या सामान्य मनुष्य से कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि समाधि पेशीय, भावनात्मक और अन्य तनावों को समाप्त नहीं करे, यदि उससे शान्ति शक्ति, और ज्ञान नहीं मिले, यदि यह आपकी कुंठाओं, द्वन्द्वों, खण्डित-मनस्कता जैसे मनोवैज्ञानिक गड़बड़ियों को दूर नहीं कर सके तो यह निश्चित रूप से समाधि नहीं है।

फिर समाधि है क्या ? क्या कोई समाधि को उपलब्ध हो सकता है ? क्या समाधि पूर्ण सजगता या पूर्ण विस्मृति, नहीं है ? क्या समाधि पूर्ण स्थगन, विस्मृति, अचेतनता, जड़ता, या पूर्ण सजगता या परम चेतना है ?

मन चेतना के मानसिक प्रतिरूपों (पैटर्नों) का बंडल है। जब चेतना के सभी प्रतिरूप अस्वीकृत हो गये हों, निर्मूल हो गये हों, तब जो चेतना का अन्तिम स्वरूप बच जाता है वही समाधि है और यहीं पर मनुष्य आन्तरिक शान्ति का अनुभव करता है।

आधुनिक मानव आये दिन जीवन में तनाव अनुभव करता है। शहरों का व्यस्त जीवन, औद्योगिक विकास, भीड़-भाड़ और पारिवारिक समस्याएँ, ये सभी तनाव बढ़ाने के कारण हैं। तनाव वह अवस्था है जिसमें दो शक्तियाँ विपरीत

दिशाओं में खींचती हैं। जब व्यक्ति एक विशेष प्रकार से कोई काम करना चाहता है तब कोई आन्तरिक शक्ति वैसा नहीं करने देती है। मनोविश्लेषक इसको कहेंगे कि यह अहम् और परा अहम में द्वन्द्व है, तनाव है।

हमारे अन्दर शुभ और अशुभ दोनों तत्त्व हैं। इन्हीं शुभ और अशुभ शक्तियों का संघर्ष ही वास्तविक तनाव है। मनोवैज्ञानिक आपको कतिपय विधियों से विश्रान्त कर सकते हैं। परन्तु सुषुप्त अवचेतन और अचेतन प्रवृत्तियों का अपरिमित भंडार हमारे भीतर है जिन्हें अनादि वासना कहते हैं। मनोवैज्ञानिक इस भंडार को रिक्त नहीं कर सकते। यहीं पर योग हमारा सहायक होता है। इसका उपचारात्मक, मानसिक, आध्यात्मिक, रहस्यमय और आतिथैतिक महत्त्व है।

यदि आप अपना तनाव दूर करना चाहते हैं, तब प्रथम चरण में आपको अपने को विश्रान्त एवं सहज बनाना होगा। तनाव के प्रथम और अन्तिम कारण का पता करें। हमारे अन्तर की दिव्य एवं निम्न शक्तियों का सतत संघर्ष ही तनाव है। योग के अभ्यास से मानसिक, पेशीय, और भावनात्मक तनाव दूर होते हैं तथा एक स्थिति आती है जहाँ यह शाश्वत संघर्ष समाप्त हो जाता है।

जब आप आँखें बन्द करते हैं, तब अंधकार और शून्यता की अनुभूति होती है पर समाधि की यौगिक अवस्था में आप आन्तरिक एवं बाह्य दोनों रूपों में सजग चैतन्य रहते हैं। फिर भी यह उच्चतम समाधि नहीं है। उच्चतम समाधि है मन का सन्तुलन, केवल चेतना का ही संतुलन नहीं। यह बौद्धिक साम्यावस्था नहीं है। कभी-कभी आपको प्रतीत होता है कि कोई तनाव नहीं है, पर उस समय तनाव चेतन स्तर से अवचेतन या अचेतन में चला गया रहता है।

जब ध्यान के उन्नत धरातल पर व्यक्ति पहुँचता है, तब जो अधिकतम तनाव व्यक्ति अनुभव करता है वह उसके अत्यन्त आन्तरिक शरीर में होता है। जीवात्मा निर्वासन में हैं। दस इन्द्रियों ने जीवात्मा की शान्ति छीन ली है। जीवात्मा बुद्धि से, बेचैनी से, जड़ता से उत्पन्न होता है। जड़ता के कारण जीवात्मा सांसारिकता में भ्रमण करता है। जीवात्मा माया, मोह आदि के पीछे भागता है और शान्ति के चार आवश्यक तत्त्वों को भूल जाता है। सत्संग, आत्मावलोकन, आध्यात्मिक साधना, और आन्तरिक नीरवता, ये चारों शान्ति की खोज दिशा में बढ़ने की राहें हैं।

इसी बिन्दु पर वास्तविक तनाव प्रारम्भ होता है। आपने अभी तक संसार में सुख पाया है, तृष्णा, लालसा और वासनाओं को बढ़ाया है। अब आपका संघर्ष है आलस्य से, प्रमाद से, अकर्मण्यता से। आपको मन की अज्ञात शक्तियों से लड़ना है, अपनी चेतना में हो रहे द्वन्द्वों से जूझना है। भक्ति, आध्यात्मिक ओजस्विता, सदा सजगता एवं अहर्निश सतर्कता प्रगति के लिए

आवश्यक है। आपकी आध्यात्मिक साधना अविरल रहे और उसकी गति सदा एक समान रहे।

कभी-कभी तो सतर्कता और सावधानी भी असफल हो जाती है। आलस्य के प्रभाव से सतर्कता ढीली पड़ जाती है क्योंकि इन्द्रियाँ बहुत शक्तिशाली हैं। यद्यपि, मछली, हाथी, साँप और हिरन की मात्र एक ही इन्द्रिय सक्रिय रहती है, फिर भी वही उनकी मौत का कारण बन जाती है, पर आदमी की तो पाँच शक्तिशाली इन्द्रियाँ हैं। अब आदमी की दशा सोचिए जो अपने को इन पाँच इन्द्रियों के हवाले कर देता है।

व्यक्ति को आध्यात्मिक साधना गंभीरतापूर्वक एवं बिना टाल-मटोल के शुरू कर देनी चाहिए। यदि आप अपने आध्यात्मिक अभ्यास के कार्यक्रम को स्थगित करते हैं तो वह आप के जीवन में कभी नहीं आयेगा। सतत सतर्कता और आध्यात्मिक सजगता के अभाव के कारण आध्यात्मिक व्यक्तित्व नष्ट हो जाता है। अतः सदा सजग रहिए। लोभ क्रोध और लालसा हमारे अन्दर छिपे भयानक डाकू हैं जो हमारे ईश्वरीय खजाने को लूट लेते हैं। अतः सदा सजग रहिए।

आन्तरिक तनाव से मुक्ति कैसे मिले ? जब तक आप योगाभ्यास नहीं करते तब तक अपने मन को अन्तर्मुखी, और अपनी इन्द्रियों को नियंत्रित मत कीजिए अन्यथा आप तनावों से मुक्त नहीं हो पायेंगे। इन्द्रियाँ और मन अविनाशी है। बिना लालसा के मानसिक सक्रियता नहीं आती। लालसा और वासना ही शुभ और अशुभ के मध्य युद्ध के मूल कारण हैं। अतः इन्द्रियों के दमन एवं इन्द्रिय वासानाओं को दबाने का कोई अर्थ नहीं है।

यदि आप आध्यात्मिक शान्ति और लोकोत्तर समचित्तता या परम शाश्वत शान्ति चाहते हैं, तो आपको आसक्ति का विनाश एवं अनासक्ति को सिद्ध करना होगा। तब किसी प्रिय वस्तु की पसन्द और अप्रिय वस्तु को नापसन्द करने की स्थिति नहीं होगी। शारीरिक, मानसिक या बौद्धिक अनासक्ति काम नहीं करेगी, आध्यात्मिक अनासक्ति ही वास्तविक अनासक्ति है।

जब अनादिवासना का भंडार रिक्त हो जाता है, तब पूर्ण सन्तुलन एवं शान्ति की अवस्था आती है। तब आप जो हैं वह हो सकेंगे। अभी आप जैसे चैतन्य हैं वैसे ही चैतन्य आप बराबर रहेंगे। समाधि परम चेतना, बुद्धि और सजगता है। जिस प्रकार आप जाग्रत अवस्था में लोगों को जानते हैं वैसे ही समाधि में सबको जानेंगे एवं पहचानेंगे। आपमें सामान्य विवेक शक्ति रहेगी, साथ ही आपकी मानसिक, बौद्धिक, राजनैतिक, सामाजिक और यौन ज्वर, आपकी शारीरिक, मानसिक और अन्ततः बौद्धिक संकट भी समाप्त हो जायेंगे।

समाधि के पश्चात् व्यक्ति निष्क्रिय नहीं हो जाता, वरन् व्यक्ति अत्यन्त शक्ति सम्पन्न एवं सक्रिय हो जाता है। कई दिनों तक अनवरत परिश्रम करने

पर भी व्यक्ति थकान नहीं अनुभव करता। व्यक्ति को प्रशान्तक और नींद की गोलियों की जरूरत नहीं पड़ती है। सुख या दुःख का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। सुख-दुःख, जन्म-मृत्यु, लाभ-हानि, मान-अपमान, प्रशंसा-निन्दा में समचित्ता बनी रहती है। व्यक्ति वर्णनातीत शान्ति से पूर्ण रहता है। आपको गहरी निद्रा की शान्ति का अनुभव है, जिस अवधि में आप सुखद अनुभूति की गोद में निश्चिन्त पड़े रहते हैं, कुछ भी अशान्त नहीं करता। समाधि और गहरी निद्रा में एक ही अन्तर है। निद्रा में आप अचैतन्य रहते हैं, जबकि समाधि में सभी चीजों के प्रति चैतन्य रहते हैं, फिर भी आप शान्त रहते हैं, सम और प्रसन्न रहते हैं। इस उच्चतम आनन्द, शान्ति और हर्ष की अवस्था की कल्पना कीजिए।

दैनिक जीवन की औंधियों का सन्तुलित मन से सामना करने हेतु प्रत्येक व्यक्ति को इस उपलब्धि की आवश्यकता है। आपको ऐसी शक्ति चाहिए जिससे आप काफी देर तक काम करने पर भी थकान अनुभव नहीं करें। आराम भी करते हैं तो आपको थकान अनुभव होगा, यदि आप भोजन करते हैं तो आपको असुविधा भी होगी, आप दवा लेते हैं तो आप अवश्य ही अस्वस्थ होंगे। अपने शरीर को, उसके नियमों को और उस नियम बनाने वाले को समझिये। बिना भोजन किये सोये रहा जा सकता है, परन्तु यह समाधि प्राप्त करने के पश्चात् ही संभव है, उसके पूर्व नहीं।

समाधि के विषय में ठीक ही कहा गया है कि यह वह उत्कर्ष है जिसकी श्रद्धापूर्वक इच्छा करनी चाहिए। हम समाधि को केवल एक साधना नहीं मानते। हमें तो शाश्वत समाधि के लिए प्रयत्न करना चाहिए और उसे साकार करना चाहिए। जिसे निष्प्रयास और उपयुक्त समाधि कहते हैं, हमें उसे उपलब्ध होना चाहिए।

आधुनिक मनुष्य ने अनेक वैज्ञानिक अन्धविश्वास विकसित कर लिए हैं। उन से हमें पीछा छुड़ाना है। कोई भी विचार, बिना समझे-बूझे भी, प्रचलित हो जाता है। योग को अपने जीवन में स्वीकार कीजिए। योग जीवन की एक पद्धति है और कल की संस्कृति है। यह आवश्यक नहीं कि किसी मूर्ति पर ध्यान करने मन्दिर में जायें। जहाँ भी आप देखें उत्कृष्ट समत्व देखें।

सांसारिक उपलब्धियों के लिए भी आपको योग को स्वीकारना है। यह आपकी सांसारिक महत्वाकांक्षा को पूरा करेगा, और आपकी आध्यात्मिक प्यास भी मिटायेगा। चाहे आपको सुखद वैवाहिक जीवन के लिए सुन्दर स्वास्थ्य की कामना हो, या आध्यात्मिक ज्ञान की कामना हो, योग आपको सहायता प्रदान करेगा। योग का प्रथम चरण है संतों का सत्संग और सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय। इसकी चरम परिणति है समाधि। यदि आप योग का अभ्यास नहीं करेंगे तो आप सदा ही अशान्त रहेंगे। आपके आन्तरिक व्यक्तित्व में कुछ गड़बड़ी हो सकती

है। भावनात्मक, पेशीय और मानसिक तनावों से मुक्ति का पहला और अन्तिम उपाय योगाभ्यास ही है। उसके बाद ही आपको तनाव से मुक्ति मिलेगी, और ऐसी स्थिति में पहुँच जायेंगे जहाँ आप आनन्द एवं हर्षातिरेक में कह उठेंगे— मैं सुखी हूँ, मैं सुखी हूँ, मैं सुखी हूँ।

योग दर्शन

भूमिका

हम एक जाग्रत युग में, मानव क्षेत्र के अहर्निश क्रान्ति के युग में रह रहे हैं। विज्ञान-प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में प्रवेश कर गये हैं और सभ्यता मानव-चिन्तन में महान क्रान्ति के साथ भौतिकता के शीर्ष पर पहुँच गई है। फ्रायड के मनोविज्ञान ने अपने नव-फ्रायडियन समूह के साथ मानव व्यक्तित्व के नये आयामों का निरूपण किया है। जीवविज्ञान, भौतिकी, रसायनशास्त्र, ज्योतिष, खगोल-विज्ञान, नीतिशास्त्र, दर्शन, और मनोविज्ञान में ज्ञान के नये परिदृश्य खुल गये हैं।

इतिहास पर एक विहंगम दृष्टि इस तथ्य को प्रकट करती है कि प्रत्येक युग में मनुष्य यही सोचता है कि वह एक विलक्षण युग में रह रहा है। तथापि यह तो निर्विवाद है कि इस शताब्दी ने प्रगति को उस बिन्दु तक पहुँचा दिया है जहाँ से लौटा नहीं जा सकता। इसलिए यह और भी आवश्यक हो गया है कि प्रगति के साधनों एवं परिणामों को समेकित और संरक्षित किया जाय, न कि अधिक उपलब्धियों की ऐसी अंधी दौड़ में लगा जाय, जिनका मनुष्य अपने हित में उपयोग ही न कर सके। इसलिए ऐसा अनुभव हो रहा है कि सही परिप्रेक्ष्य और स्वाभाविक रूप में मानसिक क्रान्ति और औद्योगिक क्रान्ति में तालमेल होना चाहिए। यहीं पर प्राचीन मूल्यों के पुनरुत्थान की आवश्यकता अति तीव्रता से अनुभव की जाती है। तथ्य बदलते रहते हैं पर मूल्यों में परिवर्तन नहीं होता है। अतः अच्छे सुव्यवस्थित प्रगति की अवधारणा के जो मौलिक तत्त्व पूर्व में थे वे आज भी हैं, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक क्षेत्रों में आये परिवर्तनों से वे विकृत नहीं हुए हैं। सत्यम् शिवम् सुन्दरम् अभीष्ट है, पर उसकी अनेक प्रकार से व्याख्या होती रही है और आज भी मानव मात्र के लिए यह परम लक्ष्य के रूप में मान्य है।

योग, अपने दर्शन और विधि दोनों ही में इस लक्ष्य की प्राप्ति का साधन है। अतः योग को विसृति के गर्भ से निकाल कर आज मानवीय ज्ञान की योजना में उसे अपने पूर्व महत्त्वपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित करना परम आवश्यक है।

योग शब्द का उपयोग, दुरुपयोग और दुष्प्रयोग हुआ है। कुछ लोगों के लिए

यह पुरावशेष है। दूसरों के लिए यह विक्षिप्त करने वाला उलझाव है। योग एक प्रचलित शब्द है, और प्राचीन भी है। पंतजलि के योग सूत्र की रचना के बहुत पूर्व, जो सांख्य तत्त्वमीमांसा का सुव्यवस्थित रूप है, अनेक हिन्दू शास्त्रों एवं बौद्ध साहित्य में योग शब्द का उपयोग हुआ है। यौगिक सिद्धान्त के पल्लवग्राही चर्चाओं से समस्या और भी अधिकाधिक उलझी है। योग के दर्शन एवं तत्त्वमीमांसा को छोड़ योगासनों पर ही (जो योग के ही अंग हैं) अधिक महत्त्व देने के कारण योग कालक्रम में शरीर-सौष्ठव प्रदान करने वाला साधन मात्र रह गया है। विरक्त, एकाकी एवं समाज से कटे जीवन के रूप में यौगिक जीवन की अरुचिकर व्याख्या के कारण लोग योग शब्द का उपयोग करने में भी संकोच अनुभव करने लगे थे। योग के सम्बन्ध में सामान्य भ्रम अभी भी प्रचलित है और उनमें कुछ तो इतने बचकाने हैं कि उन्हें गंभीरता से लिया भी नहीं जा सकता है। फिर भी इन भ्रामक व्याख्याओं के कुहरे को हटाना ही है और यौगिक मूल्यों को पुनर्प्रतिष्ठित करना ही है।

आदमी एक सामाजिक प्राणी है। वस्तुतः प्राणियों में मनुष्य ही ऐसा प्राणि है जिसमें पूर्णता की भूख और प्यास हैं। मानव का इतिहास इस बात का साक्षी है कि हमने प्रत्येक स्तर पर सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक संस्थाओं को श्रेष्ठ बनाने का प्रयास करते रहे हैं, जिससे हम सभी दुर्गुणों से मुक्त हो स्वाध्याय एवं परमचेतना की प्राप्ति हेतु उन्मुक्त जीवन जी सकें। योग दर्शन का यही उद्देश्य है, परन्तु उसकी प्रक्रिया मानव व्यक्तित्व के सभी स्तरों पर निश्चित की गई है। योग दर्शन की मान्यता है कि शरीर आत्मा का निवास स्थल है, मन के समान ही महत्त्वपूर्ण है। शरीर-क्रिया विज्ञान भी मनोविज्ञान के समान की महत्त्वपूर्ण है। शारीरिक अनुशासन से प्रारम्भ कर योग मानसिक व्यवस्था के रूपान्तरण तक जाता है, जिसके लिए मन के अनेक प्रकार के अभ्यास विहित हैं स्वस्थ शरीर एवं तेजस्वी मन के पूर्ण समन्वय के बाद ही जीवात्मा और परमात्मा का उत्कृष्ट संयोग हो सकता है।

यह प्रमाणित करने के लिए कि अच्छे अनुशासन से अच्छा स्वास्थ्य उपलब्ध होता है, शरीर के स्तर पर अतिरिक्त चिन्तन या मानसिक ऊर्जा खर्च करने की जरूरत नहीं है। जो भोजन आपका पेट खराब कर दे उससे बचना कोई आत्म त्याग नहीं है। जो सुस्वादु भोजन आपको बीमार कर दे उसको छोड़ देना कोई आत्म त्याग नहीं है। न यही कोई असहनीय दबाव है कि अपनी पेशियों को लचीला, नेत्र ज्योति को तेज और रक्त संचार प्रणाली को शुद्ध रखने हेतु कुछ योगाभ्यास करना चाहिए। अंधा स्वार्थ भी व्यक्ति को कम से कम इस प्रकार के शारीरिक संस्कार की प्रेरणा तो देगा ही। मनुष्य का यही दुर्भाग्य है कि वह इस प्रकार के विलक्षण और स्वावलम्बी शरीर संरचना को प्राप्त कर इतना पक्का मान लेता है कि तब तक इस

मशीन की देखभाल करना उसकी जबाबदेही नहीं है जब तक यह ठीक से काम करता है ।

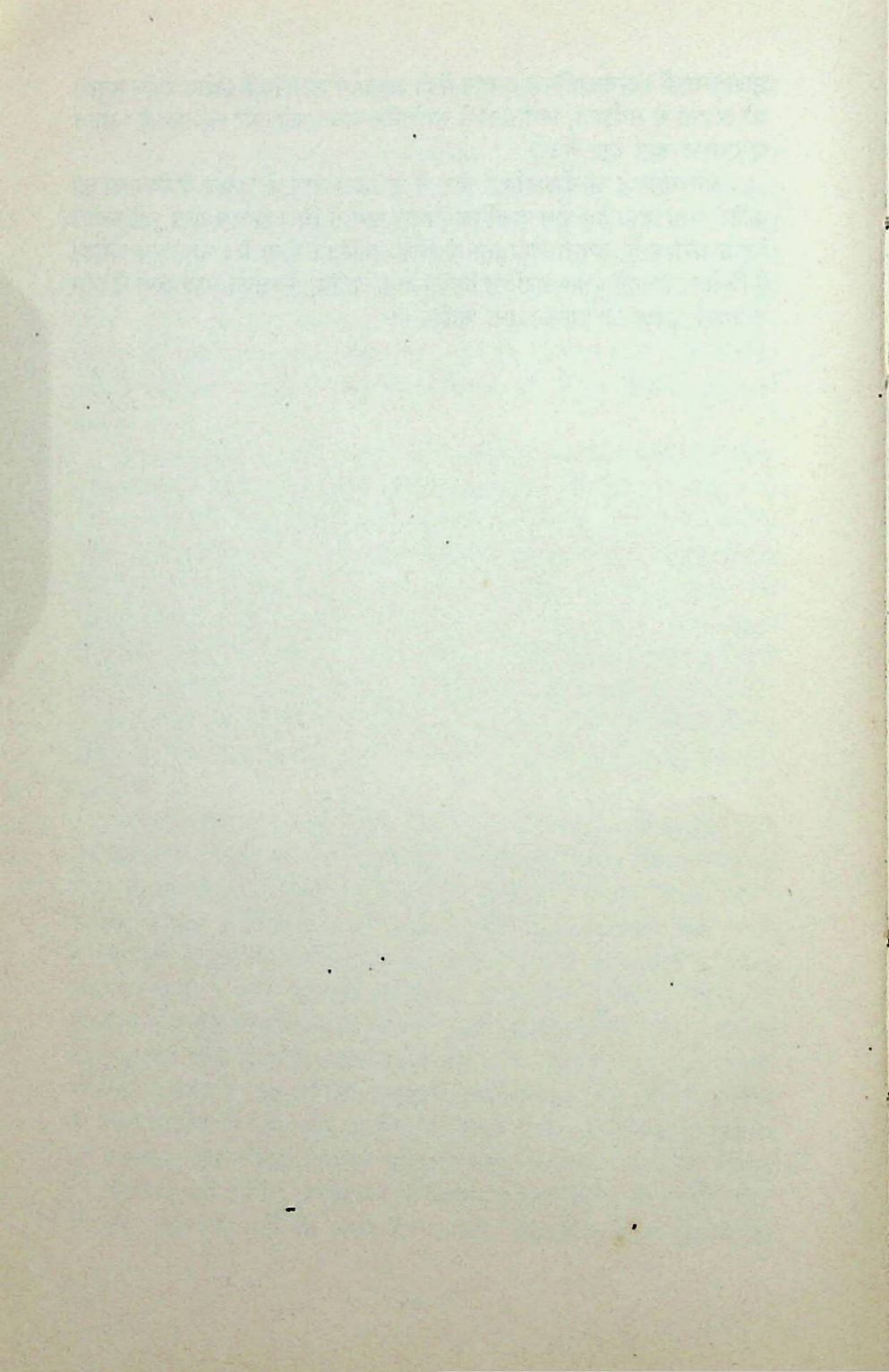
गहन-मनोविज्ञान ने कहा है कि अतीन्द्रिय नियतिवाद का एक स्वरूप होता है जो हमारे सभी विचारों, कर्मों, और वाणी को नियंत्रित करता है । वस्तुतः आधुनिक मनोवैज्ञानिक चिन्तन में क्रान्ति निर्विवाद रूप से इस निष्कर्ष पर आ गयी है कि हमारी चेतन आत्मा अचेतन दानव के समक्ष अत्यन्त बौनी है । भारत के संतों और महात्माओं ने इसी सत्य को घोषित किया है । एक वैज्ञानिक सूत्र के रूप में तो नहीं, पर एक सहज स्वाभाविक सत्य के रूप में घोषित किया है । जीवन की प्रक्रिया में मानव व्यक्तित्व में भूलें बढ़ती चली जाती हैं । यदि व्यक्ति अपनी मानसिक संरचना को समझने का प्रयास करे तो इन भूलों में सुधार हो सकता है ।

यहीं पर अपनी बदलती व्याख्याओं के बावजूद पंतजलि द्वारा प्रवर्ति योग-विद्या सहायक होती है । पंतजलि का सिद्धान्त गहन मनोविज्ञान के सिद्धान्त से पूर्ण सुसंगति में है । फ्रायड कहता है कि अवचेतन कीचड़ है, पर यह भी समझना चाहिए कि कीचड़ से ही कमल विकसित होता है । मानव मन की विस्तृत संरचना निश्चित रूप से जटिल है । पर अपने साथ अनवरत रूप से निष्ठावान हो, व्यक्ति अपने को इतना स्पष्ट रूप से देख सकता है जितना स्पष्ट रूप से आइने में अपनी छवि को देखता है । मन के लिए विहित यौगिक अनुशासन निश्चित रूप से व्यक्ति को इस ज्ञान तक ले जा सकता है । मिल्टन के शब्दों में यह— “वासना रहित एक नीरव मन” का निर्माण करता है । इन्हीं साधनों, मनों एवं शरीरों के साथ हम परमात्मा की ओर अपनी आध्यात्मिक यात्रा प्रारम्भ कर सकते हैं ।

परमात्मा तक जाने का कोई छोटा मार्ग योग दर्शन प्रस्तुत नहीं करता, वरन् एक लम्बा और कष्ट-साध्य मार्ग ही बताता है । हमारे जीवन की क्षणभंगुरता ही हमारे लिए अपने लक्ष्य की अनिवार्यता को समझने की प्रेरणा देती है । अपने आपको समझने से भिन्न कोई ज्ञान नहीं है, और अपने आपकी उपेक्षा करने से बड़ा कोई अज्ञान भी नहीं है । मन और शरीर के तप से जब आन्तरिक शान्ति प्राप्त हो जाती है तभी आध्यात्मिक मुक्ति का अवतरण जीवन में होता है । ईश्वरीय अनुभूति सामूहिक नहीं होती है । यहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपने लक्ष्य की ओर अकेला यात्री होता है । वही अपना मार्ग दर्शक होता है और वही अपना परीक्षक भी होता है । वह जो निर्णय लेता है उसके अनुसार वह उठता या गिरता है । योग के मार्ग में सभी कुछ अदूषित है । इच्छा शक्ति की कमजोरी, संकल्प की चंचलता और मन के विचलन को शुद्ध दर्शन में पाप ही कहा जा सकता है । एक बार जब यौगिक अनुशासन को जीवन में उतार लिये, फिर इनके लिए तों कोई स्थान ही नहीं रह जाता है । कमजोर आदमी मजबूत आदमी की

भ्रूणावस्था हैं। अनध्यात्मिक अज्ञान में ही अध्यात्म का कोष है। योग दर्शन मनुष्य को अज्ञता से सर्वज्ञता, निवीर्यता से सर्वशक्तिमानता की ओर ले जाता है। सान्त से अनन्त बना देता है।

आध्यात्मिक आन्दोलनों की भीड़ ने अध्यात्म मार्ग के चुनाव के विकल्प को कठिन बना दिया है। जब दार्शनिक विचार भ्रम से घिरा हो तब योग, जो हमारी पैतृक धरोहर है, हमारी सहायता के लिए उपस्थित होता है। यह ऐसा धरोहर है जिसे सावधानी पूर्वक संरक्षित किया जाना चाहिए, जिसका सभी रूपों में और सजगता पूर्वक अध्ययन करना चाहिए।



द्वितीय खण्ड

दैनिक जीवन में योग

१०८ १०८

१०८ १०८ १०८

योगासन

अधिकांश चिन्तनशील मनुष्यों ने योग को जीवन-विज्ञान के रूप में स्वीकार कर लिया है। विश्व के विभिन्न भागों में इस योग आन्दोलन के विकास पर दृष्टिपात करें तो पता चलेगा कि इसकी उपयोगिता अधिकाधिक शारीरिक पक्ष तक ही सीमित है, यथा—विभिन्न आसनों एवं प्राणायामों का प्रशिक्षण मात्र। अवश्य ही यह शारीरिक स्वास्थ्य के लिए अभीष्ट है, तथा जो अपना आगे भी विकास चाहते हैं उनके लिए भी अनिवार्य है।

मानव सुख की पहली शर्त है स्वस्थ शरीर। अपने दैनिक जीवन में अपने ढंग से कार्य करने हेतु स्वस्थ शरीर एक वरदान है। यह सभी जानते हैं कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का निवास होता है और मानसिक अवस्था भी स्वस्थ रहती है। अतः व्यावहारिक योग का मेरुदण्ड आसन है।

मुख्य आसनों की संख्या चौरासी बताते हैं। विभिन्न आसनों के प्रारम्भिक, यहाँ तक कि सैद्धान्तिक अध्ययन से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि वे शरीर के विभिन्न अंगों की सेवा करते हैं। प्रचलित शारीरिक व्यायाम से मांसपेशियाँ विकसित होती हैं और व्यक्ति मांसल हो जाता है। फिर भी यह प्रतिदिन का अनुभव है कि हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति भी अधिक देर तक जीवन के तनावों को सहन नहीं कर सकता है। इससे पता चलता है कि शरीर पर अनवरत एवं अपरिहार्य रूप से मन का प्रभाव पड़ता है, जिसे शारीरिक व्यायाम सम्हाल नहीं सकते। यहीं आसनों एवं शारीरिक व्यायामों में मुख्य अन्तर स्पष्ट होता है। आसन शरीर तन्त्र को केवल स्वस्थ एवं मजबूत ही नहीं रखते वरन् अपने सहयोगी प्राणायामों के साथ रोगों के प्रति मानसिक प्रतिरोध भी तैयार करने में सूक्ष्म रूप से सहायता देते हैं। वे शरीर के विभिन्न अंगों, जोड़ों की देखभाल करते हैं, तथा उनमें पूर्ण स्वस्थ तन्त्रिका तंत्र का भी निर्माण करते हैं। समस्त शारीरिक संरचना तन्त्रिका तन्त्र पर निर्भर है और जब तक तन्त्रिकायें चुस्त दुरुस्त एवं स्वस्थ नहीं रहती हैं, केवल मांसपेशियों के विकास से कुछ होने वाला नहीं है। साथ ही दैनिक जीवन में आसनों के अभ्यास शारीरिक ऊर्जा एवं समय की अधिक माँग नहीं करते। कमजोर शरीर वाले भी समुचित मार्ग दर्शन में आसनों की शिक्षा ले सकते हैं।

यह अत्यन्त रोचक है कि अनेक आसनों का नाम पशुओं और पक्षियों के नाम पर है, यथा—मयूरासन, शशांकासन, भुजंगासन, आदि। यदि आप आसनों

के तात्पर्य को समझेंगे तो उनसे अनेक रोचक संकेत प्राप्त होंगे। दिन भर के काम के बाद शरीर थक जाता है और ऐसा विश्वास है कि लेट जाने पर, जैसे हम सोते हैं, आराम मिलता है। पक्षी और पशु कैसे विश्राम करते हैं? प्रकृति ने उन्हें हमारी तरह लेटने की सुविधा से तो वंचित कर रखा है, फिर भी वे विश्राम करते हैं। अतः जिन भंगिमाओं में वे खड़े होते या विश्राम करते हैं उससे आसनों के कुछ संकेत प्राप्त होते हैं। जैसा पहले भी कहा गया है आसन श्रमसाध्य नहीं है, वरन् वे मनोरंजनात्मक भंगिमायें हैं जो थके शरीर को पुनः तरोताजा कर देते हैं और पुनः दिन भर आराम से काम करने के लिए आवश्यक ऊर्जा प्रदान कर देते हैं।

यह स्पष्ट कर देना अत्यावश्यक है कि आसन अन्य शारीरिक व्यायामों की तरह शरीर को थकावट नहीं देते और उसके लिए बहुत बढ़िया भोजन की भी आवश्यकता नहीं होती। वस्तुतः आसनों के पीछे यही अवधारणा है कि शरीर जब तक रहे तब तक स्वस्थ एवं चुस्त दुरुस्त रहे।

चौरासी आसनों में करीब २० आसन महत्त्वपूर्ण हैं। इन्हें निम्न पाँच श्रेणियों में रखा गया है।

ध्यान के आसन

पद्मासन

सिद्धासन

सुखासन

स्वस्तिकासन

विपरीत आसन

शीर्षासन

उत्तानआसन

सर्वांगासन

हलासन

शवासन

अधोमुखी आसन

भुजंगासन

शलभासन

धनुरासन

मयूरासन

अन्य आसन

पश्चिमोत्तासन आसन

बज्रासन

सुप्तवज्रासन

शशांकासन

योग मुद्रा

बद्ध पद्मासन

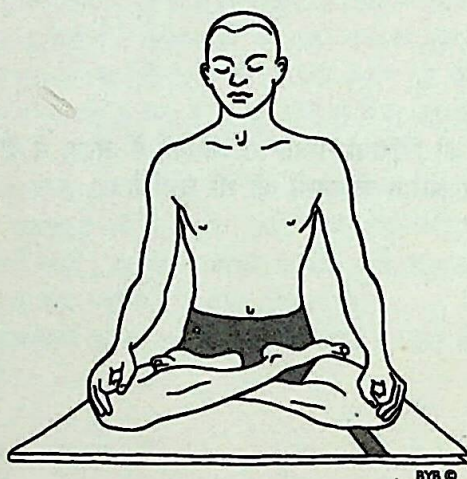
मत्स्यासन

इन आसनों की विधियाँ सम्बन्धित शीर्षकों में अलग से दी गई हैं जिनके साथ-साथ प्रत्येक आसन के लाभों की भी चर्चा है।



ध्यान के आसन

पद्मासन



कम्बल पर पैरों को समाने फैलाकर बैठ जाइये।

दाहिने पैर को मोड़ कर बायीं जाँघ पर और बायें पैर को मोड़कर दाहिनी जाँघ पर रखिये।

एड़ियों को इस प्रकार जमाइये कि वे (प्यूबिक हड्डी) जघनास्थि के सामने मिलें। पैर पेट को दबाते हुए होने चाहिए।

हाथों को घुटने पर या दाहिनी हथेली को बायीं हथेली पर सामने गोद में रख सकते हैं। वैसे ही रखें, जैसा रखने में आप को सुविधा हो।

इस आसन के समय सिर और रीढ़ की हड्डी सीधी होनी चाहिए।

आभ 'ध्यान' के लिए यह आदर्श आसन है। इस आसन में घंटों बैठा जा सकता है। मेरूदण्ड की सीधी स्थिति रहने से कशेरुकाओं के मध्य से होकर तन्त्रिकाओं के निर्बाध प्रवाह में सहायता मिलती है। रीढ़ की हड्डी सीधी रहने से पेट पर भी दबाव नहीं पड़ता एवं मन को शरीर के दबाव से अलग रखता है। पद्मासन द्वारा अनुत्रिक एवं त्रिक नाड़ी को स्वस्थ रखता है। जब व्यक्ति इस आसन में अधिक समय तक बैठता है तब उसके शरीर के निचले भाग पर दबाव पड़ता है। इससे रक्त के संचालन में रुकावट आने पर भी अनुत्रिक एवं त्रिक नाड़ी को उदर प्रदेश से अतिरिक्त रक्त प्राप्त होता रहता है।

सिद्धासन

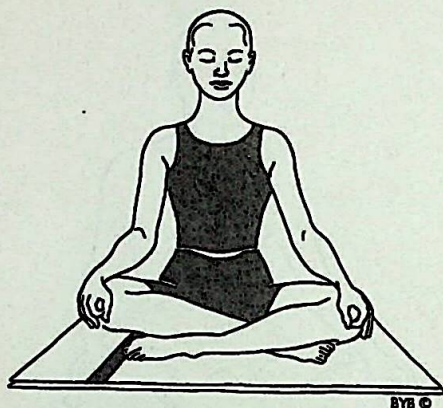


एक एड़ी को गुदाद्वार एवं जननेन्द्रिय के मध्य स्थान पर सटाइए। दूसरी एड़ी को जनेन्द्रिय के ऊपर रखिये। पंजों को जांघ एवं पिंडलियों के मध्य में फंसा दीजिये।

ज्ञानेन्द्रियों को नियन्त्रित रखिये। आँखों को भूमध्य पर केन्द्रित रखिये।

लभ-सिद्धासन अत्यधिक आराम एवं उत्तम फल प्रदान करता है। मन के नियन्त्रण द्वारा ज्ञानेन्द्रियों को वश में रखा जा सकता है। यह आसन बहुत महत्त्व का है क्योंकि यह हमें बाह्य जगत से दूर-ले जाता है। यदि लम्बी अवधि तक इसका नियमित अभ्यास किया जाये तो मन को नियन्त्रित कर समाधि की प्राप्ति की जा सकती है। इस आसन का औपचारिक महत्त्व भी ध्यान देने योग्य है। प्राणशक्ति उत्पन्न कर इसके द्वारा सभी रोगों का उपचार किया जा सकता है। जब शरीर और मन आराम की स्थिति में रहते हैं तब शरीर के लिए प्राणशक्ति उचित मात्रा में समस्त अंगों में प्रवाहित होती है।

सुखासन



यह आसन उनके लिए उपयोगी है जिनके अंगों में कड़ापन अधिक होने से वे अन्य आसन नहीं कर सकते हैं।

पैरों को मोड़ कर घुटनों को जमीन से ८-९ इंच ऊपर उठाइये।

दायाँ पंजा बायीं जाँघ के नीचे रखें। एक बड़ा तौलिया कमर एवं पैर के चारों ओर घुटनों के नीचे बाँध दीजिये ताकि जाँघों का भार कपड़े पर आधारित रहे।

दोनों हाथों को छाती के मध्य प्रार्थना की मुद्रा से जोड़ लीजिये।

कुहनियों को घुटनों पर रखिये।

यदि आप कपड़े का सहारा लिये बिना जाँघों को स्वतन्त्र छोड़ कर बैठ सकें तो यह भी ठीक है, परन्तु इस स्थिति में हथेलियाँ घुटनों पर रखें।

यह प्रारम्भिक अभ्यासियों के लिए सरलतम आसन है।

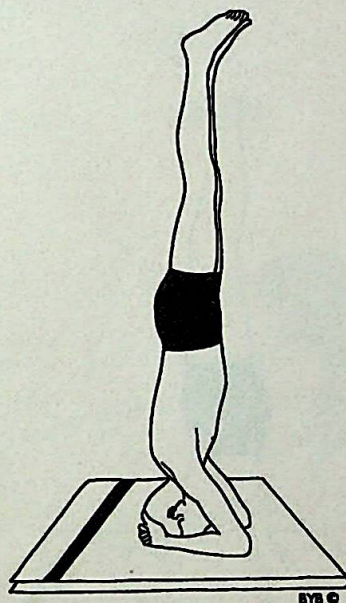
स्वस्तिकासन

बायें पैर को दाहिने पैर की पिंडली और जाँघ के बीच में रखिये तथा दाहिने पैर को बायें पैर की पिंडली एवं जाँघ के मध्य में रखिये। यह ध्यान देने योग्य है कि स्वस्तिकासन एवं सिद्धासन समान आसन है। केवल दोनों में पैरों की स्थिति में भिन्नता है। उस भिन्नता के प्रति सजग रहिए। किसी एक तरफ मत झुकिए।

स्वस्तिकासन का अर्थ है गुणा का चिह्न। स्वस्तिक हिन्दुओं का मंगल चिह्न है। विश्व के प्रायः सभी धर्मों में स्वस्तिक धार्मिकता एवं पवित्रता का सूचक है। ध्यान के लिए स्वस्तिकासन एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आसन है।

विपरीत आसन

शीर्षासन

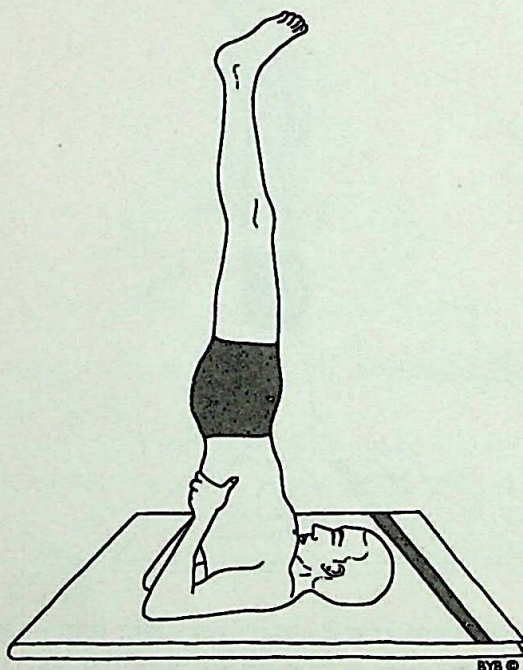


यह सभी आसनों का राजा है। कम्बल चार तहकर बिछा लीजिये और घुटनों पर बैठ जाइये। दोनों हाथों की अंगुलियों को जोड़कर जमीन पर रखिये। और इन बन्द अंगुलियों पर सिर के ऊपरी भाग को रखिये। सिर के बल प्रारम्भ में पाँच सेकेण्ड के लिए खड़े रहिये। धीरे-धीरे पैरों को ऊपर उठाइये, जब तक वे सीधी अवस्था में नहीं आ जाते। धीमी गति से पैरों को नीचे लाइये। सिर के बल खड़े होते समय धक्के या झटके से बचिये। नाक से धीरे-धीरे श्वास लीजिये। पर इसे योग्य शिक्षक के निर्देशन में सीखिये।

लाभ—इस आसन के द्वारा आप यौन ऊर्जा का परिष्कार कर सकेंगे तथा ब्रह्मचर्य पालन कर सकेंगे। इस वीर्य शक्ति का रूपान्तरण आध्यात्मिक शक्ति के रूप में हो जाता है, जिसका उपयोग ध्यान के लिए होता है। आपको सच्चे सुख एवं आत्मिक आनन्द की प्राप्ति होगी। इससे बौद्धिक और आध्यात्मिक शक्ति प्रखर होती है। नाक, आँख, गले, पेट, गुर्दे, फेफड़े, बररापन, बवासीर, दमा, मधुमेह की बीमारियाँ आदि में लाभ होता है। यह जठराग्नि को बढ़ाता है, गर्भाशय के दोष सहित बन्ध्यापन में भी लाभ मिलता है।

उत्तान आसन

सर्वांगासन

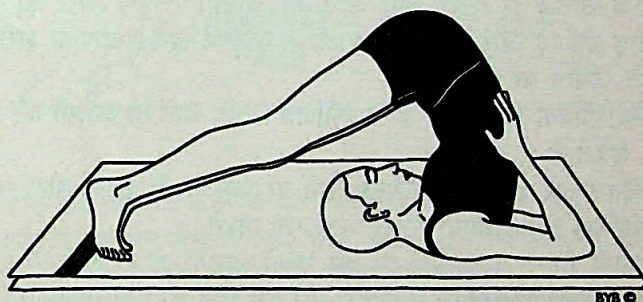


पीठ के बल लेट जाइये। पहले बायें पैर को, फिर दोनों पैरों को एक साथ उठाइये। दोनों कुहनियाँ जमीन पर लगी रहें। सिर, कन्धा और गर्दन जमीन को छूते रहें। छाती को ठुड़ी से स्पर्श कीजिये। शरीर को हिलाइये नहीं। पैरों को एकदम सीधा रखिये। जबतक असुविधा का अनुभव न हो तब तक इस अवस्था में रहिये। फिर बिना झटका दिये पैरों को धीरे-धीरे नीचे लाइये और शवासन में थोड़ा आराम कीजिए।

लाभ—यह आसन थॉयराइड ग्रन्थि का पोषण करता है। शरीर को आश्चर्यजनक रूप से स्वस्थ रखता है। मेरुदण्ड को पर्याप्त रक्त प्रदान करता है तथा उसे लचीला बनाये रखता है। इसका अर्थ होता है चिर यौवन। ब्रह्मचर्य पालन में सहायक है। खराब स्वप्नों को रोकता है। खून के लिये शक्तिवर्द्धक है। रक्त का शुद्धिकरण करता है। नाड़ियों को सुव्यवस्थित करता है। अपच दूर करता है। साथ ही पेट

की गैस सम्बन्धी गड़बड़ी को भी दूर करता है। यह आसन स्त्रियों के लिए बहुत उपयोगी है क्योंकि यह बॉझपन दूर करता है। गुदाद्वार की मांसपेशियों के तनाव को दूर करता है, जिससे बवासीर की बीमारी में लाभ पहुँचता है। मधुमेह वालों के लिये भी यह बहुत ही लाभदायक है।

हलासन



सर्वांगासन की तरह ही पहले पीठ के बल चित लेट जाइये।

दोनों हाथ बगल में रहें। एड़ी जमीन पर रहें।

बिना हाथों के सहारे पैरों को धीरे-धीरे उठाइये पर घुटनों को मोड़िये नहीं। अब पैरों को शरीर पर से ले जाते हुए धीरे-धीरे झुकाइये, जब तक पंजा सिर के पीछे जमीन को छूने लगे। पैर और जाँघ एक सीधी रेखा में हों। ठुड़ी छातीसे लगी रहे और नाक से धीरे-धीरे श्वास लीजिये।

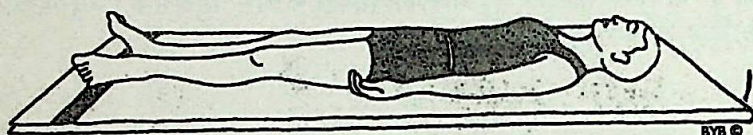
आप दोनों हाथों से पैर के अँगूठों को भी पकड़ सकते हैं।

इस आसन को करते समय किसी प्रकार का झटका या तनाव न पड़े।

आसन की समाप्ति पर पैरों को धीरे-धीरे उठाइये और जमीन पर फैलाते हुए पहली स्थिति में आ जाइये।

लाभ—यह आसन मेरुदण्ड तथा पीठ की मांसपेशियों को स्वस्थ रखता है। पीठ की हड्डियों को असमय कड़ा होने से बचाता है। विभिन्न प्रकार के पेशीय-वात रोग, मोच, कटिवात आदि रोग इससे ठीक होते हैं। हमेशा रहने वाला कब्ज, मोटापा, शक्कर की बीमारी आदि का इससे उपचार होता है। प्लीहा और यकृत में रक्त संकुलता और उनकी वृद्धि को भी यह ठीक करता है।

शवासन



BYB ©

पीठ के बल लेट जाइये।

भुजाओं को शरीर के बल बगल में रख लीजिये। हथेलियाँ कमर के पास बगल में ऊपर की ओर खुली हुई रहें। दोनों पैरों को सीधा जमीन पर एक-दूसरे से 9 फीट के फासले पर रखिये और आँखें बन्द रखिये। संपूर्ण शरीर को एकदम ढीला छोड़ दीजिये और शरीर को साक्षी भाव से देखिये। आपका शरीर शव की भाँति जमीन पर पड़ा है।

अपनी स्वाभाविक श्वास का ख्याल कीजिये। यदि चाहें तो श्वासों की गिनती भी कर सकते हैं।

अपनी चेतना को शरीर के विभिन्न अंगों पर क्रमशः ले जाइये और उस अंग का काल्पनिक बिम्ब अपने मानस पटल पर लाइये।

इस क्रिया में चेतना पंजों से प्रारंभ कर टखने, घुटने, जाँघ, कमर, पेट, छाती एवं सिर के विभिन्न अंगों पर ले जाइये और उस भाग को पूर्ण आराम की स्थिति में लाइये।

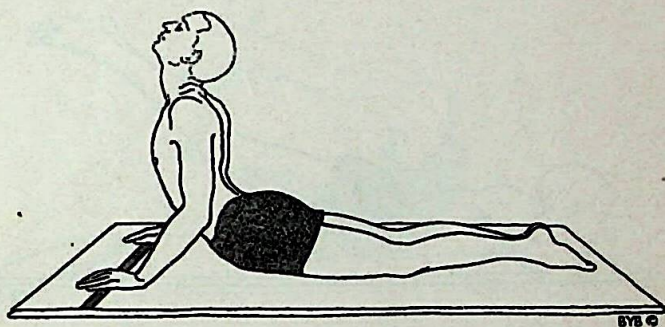
अभ्यास काल में शरीर के किसी भी अंग को न हिलाइये और न आँखें खोलिये। मानस पटल पर आने वाले विचारों के प्रति सजग रहिए और उन्हें साक्षी भाव से देखते जाइये।

नाड़ियों और पेशियों को विश्रान्त करने के लिए यह एक सर्वोत्तम आसन है। सब आसनों के बाद अंतिम कार्यक्रम के रूप में इसका अभ्यास अवश्य करना चाहिए।

~~लक्ष्य~~—इससे शरीर, मन एवं आत्मा को विश्राम मिलता है। योगाभ्यास में विश्रान्ति महत्वपूर्ण अंग है। आसन के समय जिन अंगों पर तनाव पड़ता है उन्हें विश्रान्ति की आवश्यकता होती है। शवासन में तुरत पूर्ण विश्रान्ति की प्राप्ति होती है।

अधोमुखी आसन

भुजंगासन



पेट के बल लेट जाइये। कंधों के बल हथेलियों को बगल में रखिये। दोनों पैरों को आपस में मिलाकर रखिये। माथे को जमीन से छूने दीजिये। शरीर को ढीला छोड़ दीजिये; विशेष रूप से पीठ की मांसपेशियों को।

सर्प की तरह सिर एवं शरीर के ऊपरी भाग को धीरे-धीरे ऊपर उठाइये। संपूर्ण शरीर का भार दोनों भुजाओं पर हो। सिर जितना पीछे ले जा सकें, ले जाइये।

रीढ़ की हड्डी को भी यथासंभव पीछे मोड़ते हुए कमानीदार बनाने की कोशिश कीजिए। यह भी ख्याल रखिये कि शरीर के किसी भाग में अनावश्यक जोर न पड़े। अब धीरे-धीरे सिर को नीचे लाइये।

सिर ऊपर रहने तक नाक से धीरे-धीरे श्वास लेना चाहिए। रीढ़ को मोड़ने पर श्वास को रोका जा सकता है।

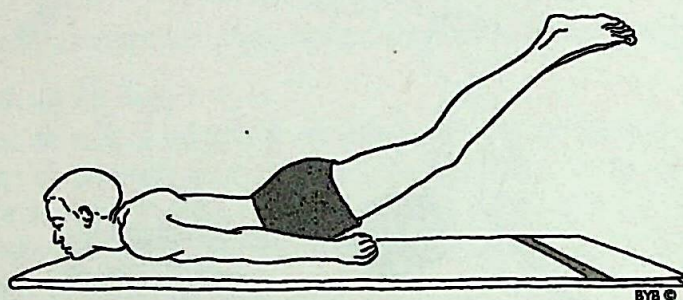
अब साँस छोड़िये।

सिर नीचे लाते समय पुनः श्वास रोकिये।

क्षमतानुसार इसकी पुनरावृत्ति की जा सकती है।

लाभ—यह स्त्रियों के गर्भाशय तथा अण्डाशय को स्वस्थ बनाने के लिए उपयोगी आसन है। अंडाशय की विभिन्न बीमारियों को दूर करता है। मेरुदण्ड को लचीला बनाता है। प्रसव सहज एवं सामान्य होता है।

शलभासन



पेट के बल लेट जाइये। हाथों को जाँघों के नीचे रखिये। हथेलियाँ जमीन की ओर हों।

ठुड़ी या मस्तक जमीन पर छूते हुए रखें।

शरीर को ढील छोड़ दें और अपनी शारीरिक स्थिति का ख्याल करें।

अब पैर तथा जाँघों को तान लीजिए।

धीरे-धीरे उदर के निचले भाग, जाँघ एवं पैरों को उठाइये। पैरों को जितना सम्भव हो सके ऊपर उठइये और उन्हें पूर्ण रूप से तनी हुई तथा सीधी स्थिति में रखें। जितना समय इस स्थिति में आसानी से रुक सकते हैं, रुकिये। फिर धीरे-धीरे जाँघ और पैरों को जमीन पर वापस लाइये।

कुछ समय के लिए इस स्थिति में आराम कीजिये।

पाँच या छह बार इस क्रिया की पुनरावृत्ति की जा सकती है।

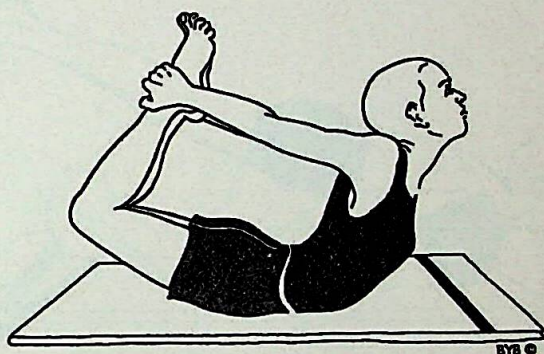
पैरों को ऊपर उठाते समय श्वास लीजिये।

आसन की पूर्णावस्था में श्वास रोकिये और जमीन पर वापस आते समय श्वास छोड़िये।

लाभ—यह आसन रीढ़ को पीछे की ओर मोड़ता है। यह सर्वांगासन एवं हलासन का विलोम है तथा उदर प्रदेश को अच्छा व्यायाम देता है। अपच दूर करता है। यकृत, गुर्दे आदि उदर प्रदेश के अंगों को शक्ति प्रदान करता है। पेट और आँत-सम्बन्धी बीमारियों को दूर करता है। इससे जठराग्नि बढ़ती है तथा अपच दूर होता है।

मेरुदण्ड के निचले हिस्से को पुष्ट करता है। साइटिका नाड़ी को खींचता और हल्का बनाता है। हृदय को भी मजबूत बनाता है।

धनुरासन

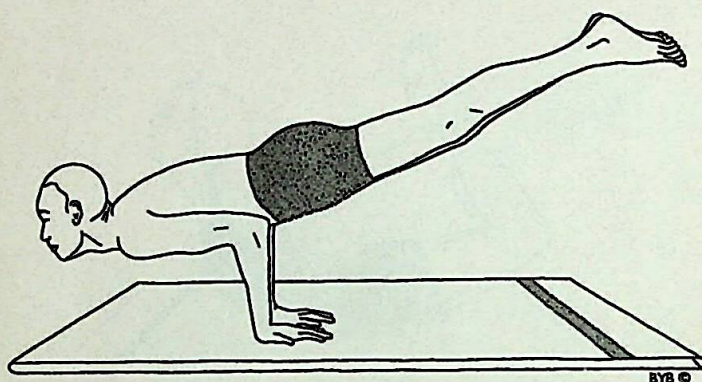


यह भुजंगासन एवं शलभासन का मिश्रण है। केवल अतिरिक्त रूप से टखने को हाथों से पकड़ा जाता है। इन दोनों के मेल से एक आसन तैयार होता है। इसे धनुरासन कहते हैं क्योंकि इसमें धनुष की आकृति निर्मित होती है।

पेट के बल जमीन पर लेट जाइये। मांसपेशियों को ढीला छोड़ दीजिये। छाती एवं सिर को ऊपर उठाइये। छाती को तानिये। भुजाओं और पैरों को सीधा तथा कड़ा रखिये। जब तक सुविधा हो तब तक इस स्थिति में रहिये। फिर जमीन पर वापस आइये और विश्राम कीजिये। इसमें सम्पूर्ण शरीर उदर पर आधारित रहता है। यह उसकी अच्छी मालिश करता है।

हमेशा रहने वाले अपचन एवं शिथिल यकृत के लिए लाभकारी है। यह आसन पैरों, घुटने के जोड़ों तथा हाथों के वात को दूर करता है। पाचन संस्थान को शक्ति प्रदान करता है तथा भूख बढ़ाता है। वायु रोग से पीड़ित व्यक्तियों के लिए यह वरदान तुल्य है। हलासन, मयूरासन एवं धनुरासन का अभ्यास करने वाले व्यक्ति शक्ति से परिपूर्ण रहते हैं।

मयूरासन



घुटनों को जमीन पर रखिये। एड़ी के बल बैठिये। हथेलियों को जमीन पर रखिये। अब उदर को धीरे-धीरे जुड़ी हुई कुहनियों पर नीचे लाइये। पूरे शरीर को कुहनी पर साधिये। कुहनी नाभि के पास दबी हुई हो। यह प्रथम सोपान है।

अब पैरों को तानिए और ऊपर उठाते हुए हाथ के समतल तक लाइये। जब यह आसन पूर्ण अवस्था में रहेगा तब सिर, कमर, जाँघ, पैर और पंजा एक सीधी रेखा में रहेंगे तथा जमीन के समानान्तर रहेंगे।

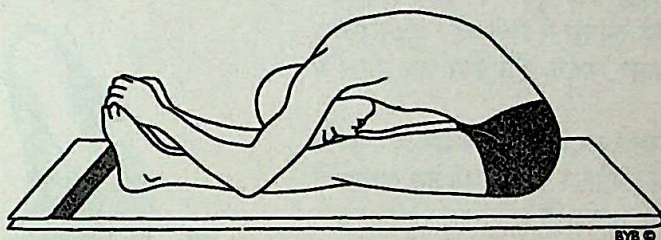
प्रारम्भिक अभ्यास करने वालों को गद्दे का सहारा लेना चाहिये।

मोटे व्यक्तियों को सतर्क रहना चाहिए तथा पैर सीधे करते समय झटके से बचना चाहिए। शरीर को ऊपर उठाते समय श्वास अन्दर रोककर रखें। आसन के अन्त में श्वास छोड़ें।

लाभ—यह आसन कम अवधि में पूर्ण व्यायाम देता है। पाचन शक्ति में आश्चर्यजनक रूप से सुधार लाता है। अपचन दूर करता है तथा पेट की बीमारी ठीक करता है। यकृत और लीवर में वृद्धि से रोकता है। फेफड़ों को सुव्यवस्थित करता है। भूख बढ़ाता है। अधिक वायु से होने वाली बीमारियों को दूर करता है। शक्कर की बीमारी एवं बवासीर के उपचार में काम करता है। हाथ की पेशियों को मजबूत करता है। पेट के अल्सर वाले रोगियों को यह आसन नहीं करना चाहिए।

अन्य आसन

पश्चिमोत्तानासन



पैरों को सामने फैलकर जमीन पर बैठिये। कमर के ऊपर का भाग सामने झुकाइये। श्वास छोड़ते हुए दोनों हाथों से पैरों के अंगूठों को पकड़ कर सामने झुकिये। झुकते समय किसी प्रकार के झटके एवं शक्ति का प्रयोग मत कीजिये। नये अभ्यासी शुरू में उतना ही झुकें जितना आसानी से झुक सकते हैं। यदि अंगूठों को पकड़ना संभव न हो तो टखनों को पकड़िये।

कुछ दिनों के अभ्यास के बाद घुटने तक सिर झुकाना सम्भव हो जाता है। सामने झुकते समय श्वास छोड़िये।

पूर्व अवस्था से लौटते समय श्वास लीजिये।

जो व्यक्ति इस आसन को पूर्ण रूप से नहीं कर सकते हैं उन्हें एक पैर और एक हाथ से प्रारम्भिक अवस्था का अभ्यास करना चाहिए। तब दूसरे पैर एवं दूसरे हाथ से यह अभ्यास करना चाहिये।

कुछ अभ्यास के बाद मेरुदण्ड लचीला होने पर आसन सरलतापूर्वक हो जाएगा।

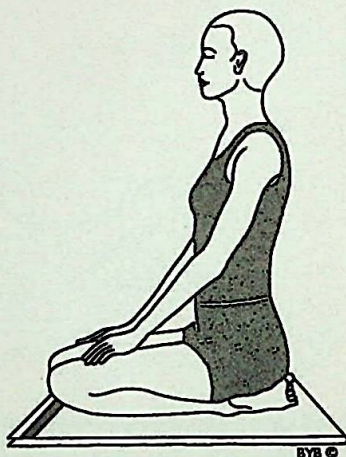
लाभ—यह आसन अति उत्तम है क्योंकि यह जठराग्नि को बढ़ाता है। यह पेट की चर्बी को कम करता है। मोटापा दूर करने के लिए यह विशेष आसन है। बढ़े हुए यकृत एवं प्लीहा के लिए उत्तम है। अपचन दूर करता है। यकृत की शिथिलता दूर करता है। वायुनाशक है। कटिवात एवं पीठ की मांसपेशियों की बीमारी ठीक करता है। इस आसन से शक्कर की बीमारी एवं बवासीर का भी उपचार होता है।

वज्रासन

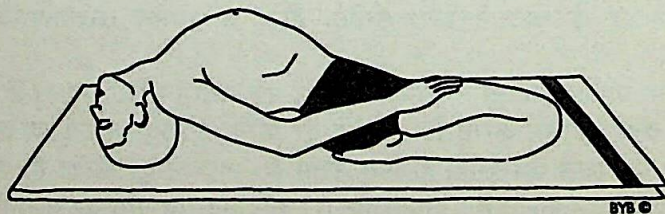
तलवों को कुल्हों के बगल में रखिये।
पिंडलियाँ जाँघों को छूती रहें। शरीर का पूरा
वजन एड़ी और घुटने पर रहे। दोनों पैरों
के अंगूठे आपस में मिले रहें। घुटने समीप
रहें। कमर, गर्दन और सिर एक सीध में
रहें।

आँखें बन्द कर साधारण श्वास का ख्याल
कीजिये। भोजन के बाद भी इस आसन में
बैठा जा सकता है।

लाभ—यह भोजन पचाने में सहायक
है। पेट की क्रियाशीलता बढ़ाता है। अतः
भोजन के बाद अभ्यास के रूप में बड़ा
लाभकारी है, विशेष रूप से उन लोगों के
लिए जो अपचन से ग्रस्त हैं। यह अमाशय और गर्भाशय को भी शक्ति प्रदान
करता है। घुटने, पैर, जाँघ एवं साइटिका के दर्द दूर करने के लिए उपयोगी
आसन है। कब्ज एवं मधुमेह के रोगियों में इसके नियमित अभ्यास से
आश्चर्यजनक परिवर्तन देखा गया है।



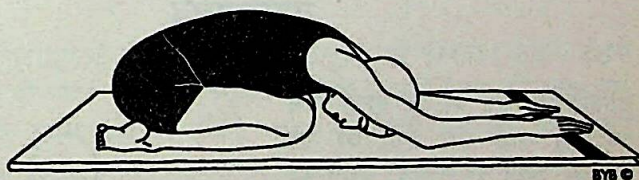
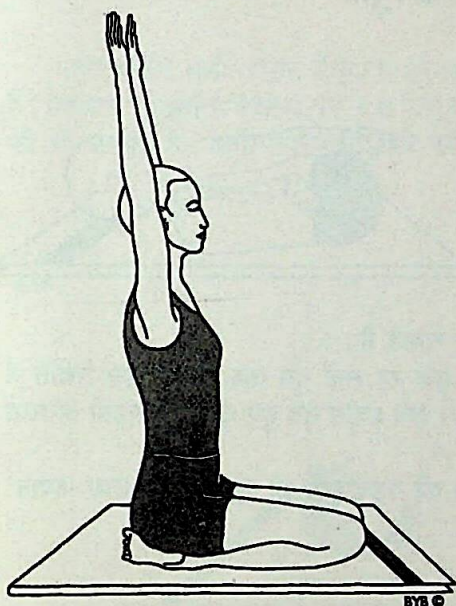
सुप्त वज्रासन



वज्रासन में बैठकर पीठ के बल कुहनी एवं सिर का सहारा लेकर चित
लेट जाइये। इस आसन से घुटनों में विशेष जोर पड़ता है।

लाभ—वज्रासन के सभी लाभ इससे प्राप्त किये जा सकते हैं।

शशांकासन



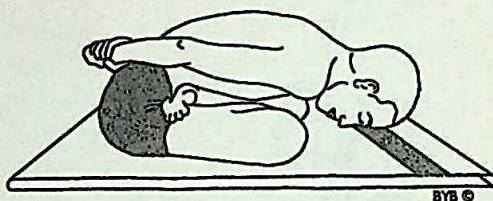
वज्रासन में बैठिये। दोनों हाथों को धीरे-धीरे ऊपर की ओर लाइये। हाथ कानों से सटे हुए सीधे ऊपर की ओर रहें। श्वास लीजिये। धीरे-धीरे श्वास छोड़ते हुए सामने झुकिये। मस्तक और हाथ जमीन पर हों। साधारण श्वास का या अपनी शारीरिक स्थिति का ख्याल कीजिये। श्वास लेते हुए धीरे-धीरे पहली स्थिति में आइये। इस प्रकार आठ-दस बार दुहराइये।

मानसिक शांति प्राप्त करने के लिए पूर्णवस्था में १०-१५ मिनट रुकें।

लाभ—यह आसन कूल्हे और गुदाद्वार की मांसपेशियों को सामान्य स्थिति में रखता है। इससे पेचिश की बीमारी ठीक होती है। यकृत और गुर्दे की गड़बड़ी दूर हो जाती है। पीठ दर्द ठीक होता है। इसके अभ्यास से मानसिक उत्तेजना एवं क्रोध को वश में किया जा सकता है।

योगमुद्रा

पद्मासन में बैठिये। बायीं कलाई को दाहिने हाथ से पीछे की ओर पकड़िये। श्वास छोड़ते हुए सामने की ओर झुकिये। ठुड़ी तथा मस्तक से जमीन का स्पर्श कीजिये।



कलाई पीछे पकड़ने के बदले हाथों को एड़ी पर भी रख सकते हैं।

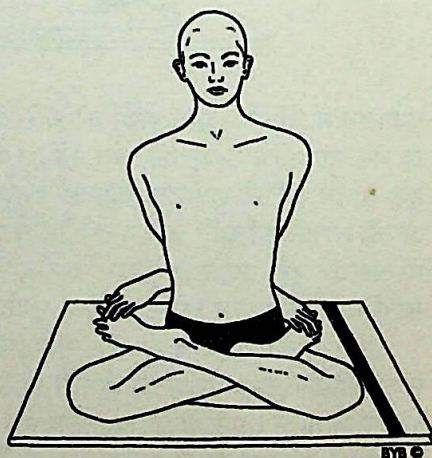
सरलतापूर्वक इस स्थिति में जब तक रह सकें तब तक रहिये। इस स्थिति में श्वास की क्रिया स्वाभाविक रहेगी। अब श्वास लेते हुए धीरे-धीरे पहली अवस्था में आइये।

लाभ—यह आसन उदर प्रदेश की गड़बड़ियों को दूर करता है तथा 'ध्यान' केन्द्रित करने में सहायक है।

बद्धपद्मासन

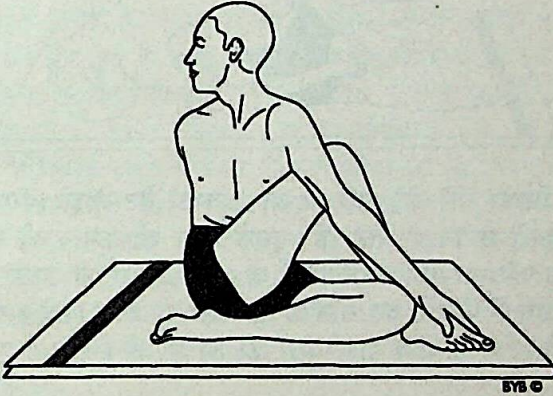
दाहिने पंजे एवं पैर को बायीं जाँघ पर एवं बायें पंजे तथा पैर को दाहिनी, जाँघ पर रखिये। हाथों को पीछे ले जाकर दाहिने हाथ से दाहिने पैर के अंगूठे तथा बायें हाथ से बायें पैर के अंगूठे को पकड़िये।

बद्धपद्मासन से पेट की बीमारियाँ दूर होती हैं। यही आसन प्रतिदिन दो बार आधा घण्टा किया जाये तो अन्य आसनों के अभ्यास की जरूरत नहीं रहती। यह हाथ, कन्धे, भुजा एवं पीठ को मजबूत बनाता है तथा छाती की चौड़ाई को बढ़ाता है।



अर्ध मत्स्येन्द्रासन

पहले वर्णित सभी आसन मेरुदण्ड को आगे या पीछे की ओर झुकाने वाले हैं। मेरुदण्ड को पूर्णतः लचीला बनाने के लिए दोनों दिशाओं में मुड़ने वाले आसन की भी जरूरत है। अर्धमत्स्येन्द्रासन यही कार्य अच्छी तरह करता है।



बायीं एड़ी को गुदाद्वार के नीचे रखिये। दाहिने घुटने को मोड़िये। दाहिने टखने को बायें घुटने के बाहरी भाग के बगल में रखिये। बायीं भुजा को झुका कर दाहिने घुटने के ऊपरी भाग पर रखिये। घुटने को थोड़ा पीछे की ओर लाइये ताकि वह भुजा के पिछले भाग को स्पर्श कीजिये। दाहिने टखने को बायीं हथेली से पकड़िये। अब बायें कंधे के मोड़ पर दबाव देते हुए रीढ़ को मोड़िये तथा अधिक से अधिक दाहिनी ओर मुड़िये। दाहिनी भुजा से पीछे की ओर मुड़े तथा दाहिने हाथ से बायीं जाँघ का स्पर्श कीजिये। गर्दन को भी दायीं ओर घुमाइये तथा दाहिनी भुजा की सीध में ले आइये। मेरुदण्ड सीधा रहे।

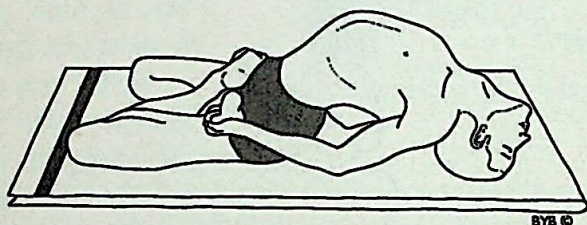
इस अवस्था में ५ से १५ सेकण्ड तक रहिये।

इसी तरह रीढ़ को बायीं ओर घुमाइये।

लाभ—यह पीठ की मांसपेशियों की मालिश करता है, नाड़ियों को शक्ति प्रदान करता है तथा मेरुदण्ड को लचीला बनाता है। उदर प्रवेश के अंगों की मालिश कर पाचन सम्बन्धी रोगों को दूर करता है। उपवृक्क ग्रंथियों की क्रिया को नियमित कर उसके रस-स्राव के कार्यों को व्यवस्थित करता है। वृक्क को क्रियाशील बनाता है। अतः मधुमेह रोग के प्रकोप को कम करता है। वात की शिकायत को दूर

करने में मदद करता है। स्लिप डिस्क की निम्न अवस्था के उपचार में उपयोगी है। पीठ में स्थित अनेकों नाड़ियों को शक्तिशाली और स्वस्थ बनाता है। इसी प्रकार समस्त नाड़ी संस्थान पर अच्छा प्रभाव डालता है।

मत्स्यासन



पद्मासन में बैठकर धीरे-धीरे पीछे की ओर झुककर लेट जाइये। सिर का ऊपर भाग तथा कूल्हे जमीन पर सटे रहें। इससे कमर की कमान की सी आकृति बनेगी। हाथ जॉघ पर रखे जा सकते हैं या उनसे अंगूठों को पकड़ा जा सकता है। दूसरी विधि में पीठ के बल सोने के बाद सिर को क्रॉस किये हाथों पर रखा जा सकता है। फिर हाथों के सहारे सिर को आराम की स्थिति में लाइये। अब बैठ जाइये।

लाभ—यह आसन सर्वांगासन की पूर्ति करता है। अपचन दूर करता है तथा अनेक बीमारियों को भगाता है। दमा तथा जीर्ण ब्रोंकाइटिस दूर करता है।

सारांश—

१. आसन एकान्त और हवादार कमरे में किया जाय।
२. आसन व्यावहारिक योग के क्रियाशील पक्ष का महत्त्वपूर्ण अंग है।
३. इनमें समय कम लगता है, पर लाभ अधिक है।
४. ये मुटापा को निश्चित रूप से दूर करते हैं तथा चर्बी घटाते हैं। पाचन को पूर्ण एवं कब्ज को समाप्त करते हैं।
५. उच्च रक्तचाप को निश्चितरूप से कम करते हैं।
६. इनमें मनोशारीरिक एवं शारीर-मानसिक क्षमतायें अपार हैं।

प्राणायाम

‘प्राण’ का अर्थ है ‘जीवनी-शक्ति’, जो शरीर के विभिन्न अंगों द्वारा अपने को अभिव्यक्त करती है। सामान्य रूप से इसका अर्थ ‘श्वास’ से लेते हैं।

प्राणायाम का अर्थ है ‘प्राण पर नियंत्रण’। दूसरे शब्दों में हम इसे यौगिक श्वसन प्रक्रिया भी कह सकते हैं। इस अभ्यास में तीन क्रियायें निहित हैं—

१. श्वास लेना, २. श्वास रोकना ३. श्वास छोड़ना।

शरीर को स्वस्थ रखने के लिये आसन, प्राणायाम आवश्यक है। हम सब स्वस्थ रहना चाहते हैं। कोई व्यक्ति इसका अपवाद नहीं है। सांसारिक जीवन में प्रतिदिन के क्रियाकलाप या आत्मज्ञान की प्राप्ति स्वस्थ शरीर के बिना नहीं हो सकती। बीमार व्यक्ति ठीक तरह से प्रार्थना भी नहीं कर सकता। प्रत्येक व्यक्ति स्वस्थ रहना चाहता है परन्तु अज्ञानवश व्यक्ति को कष्ट झेलना पड़ता है। स्वास्थ्य में कैसे सुधार लाया जाये तथा स्वास्थ्य कैसे अच्छा रखा जाये इसकी शिक्षा योग विज्ञान देता है।

श्वास जीवन है। कोई व्यक्ति कुछ समय बिना भोजन के जीवित रह सकता है, परन्तु श्वास के बिना जीवित नहीं रह सकता। जब हम श्वास लेते हैं तब वायु शरीर में प्रवेश करती है। वायु में ऑक्सीजन रहता है, जो प्राणदायक होने के कारण आवश्यक है। समस्त जीव-जन्तुओं का जीवन वायु में मिले ऑक्सीजन पर निर्भर रहता है। यदि वायु में ऑक्सीजन न हो तो समस्त प्राणी वर्ग जीवनरहित हो जायेंगे। ऑक्सीजन ज्वलन क्रिया का सहायक तत्त्व है। धीरे-धीरे स्वयं की जलने की क्रिया ही जीवन है।

शरीर के सब तन्तु निरन्तर ऑक्सीजन से सम्पर्क कर धीरे-धीरे जलते हैं। परिणामतः अविरल रूप से हमारे शरीर में ज्वलन क्रिया होती रहती है तथा बहुत संख्या में कोशिकायें जलती रहती हैं। इससे हमारे जीवन के लिए आवश्यक तापमान शरीर में बना रहता है।

हमारे शरीर में रक्त संस्थान द्वारा रक्त प्रवाहित होता रहता है। यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। हमारे सम्पूर्ण शरीर में रक्तवाहिनी नलियों का जाल-सा बिछा है। ये नलियाँ बाल से भी सूक्ष्म होती हैं। इनकी दीवालें अत्यधिक पतली तथा छिद्रमय रहती हैं। इन दीवालों को पार करके प्रवाहित रक्त कोशिकाओं तक पहुँचता है। कोशिकायें आवश्यक जीवन-तत्त्व को ग्रहण कर लेती हैं तथा

अपने अपशिष्ट को रक्त प्रवाह में वापस भेज देती है। इस प्रकार ऑक्सीजन कोशिकाओं में पहुँचता है। ऑक्सीडेशन प्रक्रिया में बना कार्बनडायाऑक्साइड हृदय में लौटने वाले रक्त के साथ शुद्ध होने के लिए चल देता है।

इस प्रकार रक्त विभिन्न संस्थानों को अशुद्धियों के साथ हृदय में पहुँचता है। हृदय इसे छोटी नलियों द्वारा फेफड़ों में भेजता है। जहाँ अशुद्ध रक्त फेफड़ों में ताजी हवा के सम्पर्क में आता है। ताजी हवा से ऑक्सीजन सोख लिया जाता है तथा कार्बनडायाऑक्साइड प्रश्वास द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है।

शरीर में असंख्य कोशिकाओं में जो रासायनिक परिवर्तन निरन्तर होते रहते हैं, उन्हीं के परिणामस्वरूप शरीर में हर तरह का परिवर्तन होते हैं। जब कभी पेशी संकुचित होती है, ग्रंथि से रस निकलता है। यहाँ तक कि जब हम कुछ विचार करते हैं तब भी सम्बन्धित अंगों में रासायनिक परिवर्तन होता है। रासायनिक परिवर्तन से हमारा तात्पर्य ऑक्सीकरण से है। रक्त के साथ शरीर में फैलने वाला ऑक्सीजन अपने सम्पर्क में आने वाले मिश्रण से मिलता है, उसे विभाजित करता है। इस प्रक्रिया के द्वारा ऐसे अनुपयोगी पदार्थों का भी निर्माण होता है जिनका शरीर के बाहर निकालना आवश्यक है। अशुद्ध रक्त को हृदय से फेफड़ों में भेजा जाता है। यहाँ से वह हमारी श्वास के द्वारा अशुद्धियाँ श्वास नलिकाओं से बाहर आती हैं। संक्षेप में यही ऑक्सीकरण की क्रिया है। स्वस्थ शरीर पूर्णतः आन्तरिक संस्थानों, ग्रंथियों एवं अन्य अंगों के कार्यों पर निर्भर है। शरीर की महत्वपूर्ण क्रियाओं के अन्तर्गत श्वास लेने एवं छोड़ने की क्रिया भी आती है। इस क्रिया के बन्द होने पर कुछ ही क्षणों में मृत्यु निश्चित है।

अतः आवश्यक है कि उपरोक्त कार्यों का सम्पादन करने वाले अंग स्वस्थ रहें। अधिकतर श्वसन अंगों की कमजोरी के कारण मनुष्य अनेक रोगों जैसे निमोनिया, फ्लूरिसी, इन्फ्लुएँजा, सर्दी-खाँसी एवं नासिका सम्बन्धी रोगों का शिकार बन जाते हैं।

शरीर में रहने वाले अनेक विषैले पदार्थों एवं उनसे होने वाली बीमारियों से शरीर को मुक्त करने के लिये और सभी अंगों को शक्ति पूर्ण करने की क्रिया प्राणायाम है।

साधारणतः मनुष्य प्राणायाम के नाम से डरते हैं। इसके विषय में कुछ गलत धारणाएँ बन गई हैं। उदाहरणार्थ—प्राणायाम के अभ्यास में ताकत के साथ श्वास जिन अंगों में खींची जाती है वे अंग भी फूट सकते हैं और व्यक्ति की मृत्यु संभव है। यह बात वास्तविकता से बड़ी दूर है। जीवन के लिए खतरा उत्पन्न करने वाली बातों का हम पक्ष नहीं ले सकते हैं। योग का यह उद्देश्य नहीं है और न इसमें ऐसी बातों का स्थान है। अतः पाठक इन गलतफहमियों में न रहें। कुछ उच्च अभ्यास ऐसे अवश्य हैं जिन्हें केवल अधिकारी शिष्यों को ही प्रत्यक्ष निर्देशन

में सिखलाया जाता है। यहाँ जिस प्राणायाम का वर्णन किया जा रहा है, वह सर्वसाधारण के लिए है। इससे कोई खतरा नहीं है। सभी इसका अभ्यास कर सकते हैं।

साधारण श्वास-प्रश्वास क्रिया के तीन स्तर हैं, चाहें हम प्राणायाम का अभ्यास करें या न करें। ये तीन स्तर हैं—सुगमतापूर्वक श्वास लेना, छोड़ना एवं रोकना। सभी प्राणायाम कुछ विशेषता लिये हुए इन्हीं तीन क्रियाओं के योग से बने हैं।

लाभ—

प्राणायाम के अभ्यास से फेफड़े लचीले और मजबूत बनते हैं। शरीर में गर्मी उत्पन्न होती है। जितना अधिक ऑक्सीजन शरीर में पहुँचेगा उतना ही कार्बन डायऑक्साइड शरीर से बाहर निकलेगा।

शारीरिक व्यायाम से शरीर में रासायनिक परिवर्तन और तत्त्वों का विखण्डन होता है। परिणामतः शक्ति का हास होता है। इसकी पूर्ति एवं शरीर-शुद्धि प्राणायाम के द्वारा शरीर में अधिक ऑक्सीजन पहुँचाकर की जाती है। मस्तिष्क एवं नाड़ियों पर भी प्राणायाम का अच्छा प्रभाव पड़ता है। यह मस्तिष्क के कार्यों को सुव्यवस्थित करता है। मस्तिष्क के छोटे एवं बड़े रहस्यपूर्ण केन्द्रों को जाग्रत करता है और उन्हें शक्ति प्रदान करता है। प्राणायाम के नियमित अभ्यास से पिट्यूटरी तथा पीनियल ग्रंथियों का बहुमुखी विकास होता है।

प्राणायाम केवल श्वसन संस्थान को ही लाभ नहीं पहुँचाता वरन् कान, आँख एवं गले की बीमारियों को भी दूर करता है। टांसिलाइटिस, बहरापन, असपष्ट आवाज, मुँहासे आदि प्राणायाम से ठीक हो जाते हैं। आसन की तरह प्राणायाम भी विभिन्न रोगों को रोकने की शक्ति उत्पन्न करता है। यदि कोई बीमारी हो जाती है तो विभिन्न प्राणायामों द्वारा उसका भी उपचार किया जा सकता है। रोग उपचार के लिए प्राणायाम उन्हीं से सीखना चाहिए जो इसके अभ्यास के जानकार हों तथा इसका अभ्यास विधिपूर्वक किया हो।

केवल श्वसन यंत्रों पर ही प्राणायाम का प्रभाव नहीं पड़ता बल्कि अन्य अंगों पर भी पड़ता है। यकृत एवं गुर्दे आदि सुव्यवस्थित हो जाते हैं और उनके सुचारु कार्य के परिणामस्वरूप रक्त परिवहन अच्छी तरह होता है तथा ऑक्सीकरण की क्रिया तेजी से होती है। आँतों को व्यवस्थित कर भूख को बढ़ाता है एवं इससे अपचन दूर होता है। सम्पूर्ण शरीर के स्वास्थ्य के लिये तथा शारीरिक संस्थानों के स्वास्थ्य के लिए यह आवश्यक है।

प्राणायाम के उच्च अभ्यास के समय मस्तिष्क कुछ समय के लिए विश्रान्त एवं विचार रहित हो जाता है, जिससे विश्राम मिलता है। श्वास रोकने के अभ्यास के समय भी मस्तिष्क को विश्राम पहुँचता है। मस्तिष्क को विश्राम देने की और

कोई विधि नहीं है क्योंकि हर क्षण विचार उत्पन्न होते रहते हैं। प्राणायाम के अभ्यास के समय मन स्थिर हो जाता है। इसीलिये प्राणायाम मन को ध्यान के लिए तैयार करने का अच्छा अभ्यास माना जाता है।

प्राणायाम के द्वारा हम नाड़ियों पर नियंत्रण प्राप्त करते हैं। जैसे ही इसका अभ्यास प्रारंभ किया जाता है, नाड़ियों का तनाव कम हो जाता है और असाधारण शक्ति प्राप्त होती है। प्राणायाम एक ऐसी विधि है जो निश्चित रूप से स्नायु संस्थान को सुव्यवस्थित करती है। शारीरिक संस्थानों से अशुद्धियों को निकालने के लिए प्राणायाम एक अच्छा अभ्यास है।

प्राण वाहिकाओं की शुद्धिकरण की प्रक्रिया कहलाता है। यह एक प्रकार से श्वसन व्यायाम है। इसका अभ्यास प्रातःकालीन शुद्ध वायु में करना चाहिए।

प्राणायाम की प्रक्रिया

अब हम प्राणायाम की विभिन्न विधियों तथा बीमारियों में उनके उपचारात्मक लाभों का विवरण देंगे।

प्राणायाम की तीन आवश्यकतायें हैं—आसन, मुद्रा एवं प्रक्रिया। इसके लिए एक छोटे कम्बल की आवश्यकता है। ऐसे स्थान का चुनाव करना चाहिए जहाँ शांत एवं शुद्ध वातावरण हो। प्राणायाम का अभ्यास दुर्गंधमय, गन्दे तथा धुएँ वाले स्थान में नहीं करना चाहिये। प्रकाशपूर्ण तथा हवादार कमरा प्राणायाम के अभ्यास के लिए उपयुक्त है यहां तक कि शीतकाल में भी। प्राणायाम का अभ्यास कम्बल पर बैठ कर करना चाहिए। प्राणायाम के लिए सुबह का समय अति उत्तम है।

आसन का अभ्यास करने वालों को प्रातः नित्य क्रिया, स्नान आदि से निपट कर आसन का अभ्यास करना चाहिए। प्राणायाम का अभ्यास आसन के पश्चात् किया जाये। ध्यान में रखने योग्य महत्वपूर्ण बात यह है कि प्राणायाम का अभ्यास खाली पेट किया जाय या खाने के कम से कम चार घंटे के बाद ही किया जाय। ग्रीष्म ऋतु में प्राणायाम का अभ्यास कम कर देना चाहिए तथा ठण्ड की ऋतु में धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए।

प्राणायाम के लिए अति उत्तम आसन पद्मासन एवं सिद्धासन है। जो पद्मासन में बैठ सकते हैं, उन्हें शांतिपूर्वक पद्मासन में बैठना चाहिए। एक बात की सावधानी रखी जाये कि रीढ़ की हड्डी, सिर और गर्दन भी सीधे रहें। जिस आसन में चाहें, उसमें बैठ भी सकते हैं परन्तु आसन आरामदायक होना चाहिए ताकि अभ्यास के समय बदलना न पड़े।

प्राणायाम के समय आँखें बन्द रखें। नासिका को पकड़ने के लिए दाहिना हाथ स्वतन्त्र रहे। बायाँ हाथ आराम से घुटने के पास या उसके ऊपर रखा जाय या हथेली को जोंघ पर भी रख सकते हैं।

प्राणायाम के अभ्यास के समय नासिकाओं को बन्द करना पड़ता है। यह कार्य दाहिने हाथ से किया जाता है तथा विशेष विधि से नासिका पकड़ी जाती है।

जब बाँया नासिका छिद्र बन्द करना होता है तो दाहिने हाथ को अनामिका से करते हैं। जब दाहिना नासिका छिद्र बन्द करना हो तो दाहिने हाथ के अँगूठे से करते हैं।

बिना अपवाद के प्रत्येक व्यक्ति प्राणायाम का अभ्यास कर सकता है। सच तो यह है कि हर जीव श्वास लेता एवं छोड़ता है एवं दूसरे शब्द में प्राणायाम करता है। इसीलिये बीमार व्यक्ति भी सुगम, सरल प्राणायाम का अभ्यास कर सकता है। जो अत्यधिक कमजोर है, वे लेटे-लेटे ही हल्के प्राणायाम कर सकते हैं। ऐसे व्यक्ति भी फेफड़ों में धीरे-धीरे वायु भर सकते हैं तथा निकाल सकते हैं। ऐसा हम चेतन या अचेतन रूप में कर भी रहे हैं। प्राणायाम की प्रक्रिया केवल यही सिखाती है कि ठीक ढंग से श्वसन कैसे किया जाय।

अब हम विभिन्न प्रकार के प्राणायाम एवं उनकी विधियों के विषय में चर्चा करेंगे। प्राणायाम के तीन सोपान हैं—पूरक, रेचक और कुम्भक।

जब हम श्वास लेते हैं तब उसे 'पूरक' कहते हैं। निःश्वास या श्वास बाहर छोड़ने की क्रिया 'रेचक' कहलाती है। जब श्वास रोकी जाती है तब उसे कुम्भक कहते हैं।

कुम्भक के भी दो प्रकार हैं। श्वास को भीतर रोकना अन्तर्कुम्भक कहलाता है। श्वास बाहर छोड़ने के बाद ही श्वास रोकने को बहिर्कुम्भक कहते हैं। आगे इन्हीं शब्दों का प्रयोग किया जाएगा। अतः इन्हें ध्यान में रखिये। श्वास लेने को पूरक, छोड़ने को रेचक, श्वास भीतर रोकने को अन्तर्कुम्भक एवं बाहर रोकने को बहिर्कुम्भक कहा जाता है।

पहले प्राणायाम के लिये शरीर और मन को तैयार कर लेना आवश्यक है फिर क्रमशः विधिपूर्वक पूरक, रेचक और कुम्भक की अवधि बढ़ाकर प्राण पर नियंत्रण पाने का अभ्यास करना चाहिए।

महत्त्वपूर्ण प्राणायाम हैं—

सुखपूर्वक, समवेत, सहित, नाड़ी शोधन, भ्रामरी, उज्जायी, शीतली, शीतकारी, भस्त्रिका, सूर्यवेध, केवली, प्लाविनी और चतुर्थ।

प्राणायाम की स्थिति



पद्मासन, सिद्धासन या ध्यान के किसी भी आसन में बैठ जाइये।

आँखें बन्द कर लीजिये। सम्पूर्ण शरीर ढीला छोड़ दीजिये।

कुछ समय के लिए अपनी समस्याओं को भूल जाइये।

अपनी शारीरिक स्थिति का ख्याल कीजिए कि शरीर के किसी भाग में तनाव तो नहीं है ? पूर्ण जागरूकता के साथ अपनी प्रत्येक श्वास को साक्षी भाव से देखते जाइये। एक भी श्वास आपकी चेतना से बच कर न जाने पाये।

अभ्यास काल में यदि किसी प्रकार के विचार आते हैं तो उन्हें भी देखते जाइये। उन्हें हटाने का प्रयत्न मत कीजिये। कुछ मिनट इसके अभ्यास के बाद आप शारीरिक स्थिरता, मानसिक शांति, प्रसन्नता एवं एकाग्रता का अनुभव करेंगे। अब दाहिना हाथ ऊपर उठा कर नाक पर रखिये। मध्यमा व तर्जनी अंगुली भ्रूमध्य में रख दीजिये।

अनामिका अंगुली बायीं नासिका छिद्र के ऊपर तथा अंगूठा दाहिनी नासिका छिद्र के ऊपर रखिये। कनिष्ठा खाली रहे। कुहनी छाती के सामने रहे, जिससे हाथ में दर्द न हो। सिर, गर्दन तथा मेरुदण्ड एक सीध में रखें।

प्राणायाम के पहले अपने शरीर को उपर्युक्त वर्णित स्थिति में पूर्ण रूप से व्यवस्थित करने के बाद ही प्राणायाम का अभ्यास प्रारम्भ करना चाहिए।

सरल या सुखपूर्वक प्राणायाम

प्राणायाम की स्थिति में बैठ जाइये।

पहले दाहिनी नासिका-छिद्र को बन्द कर केवल बायीं नासिका छिद्र से श्वास लीजिये। सामान्य रूप से जितना संभव हो सके धीरे-धीरे श्वास लीजिये। जब फेफड़े वायु से भर जाएँ तब बायीं नासिका छिद्र को बन्द कीजिये। दाहिनी नासिका छिद्र से श्वास छोड़िये। फिर दाहिनी नासिका छिद्र से ही श्वास लीजिये। अब उसे बन्द कीजिए और बायीं से श्वास छोड़िये। यह एक पूर्ण आवृत्ति हुई।

इस प्रकार इसकी पुनरावृत्ति १५-२० बार कीजिये।

कुछ दिनों के अभ्यास के बाद आवृत्तियों की संख्या बढ़ाते जाइये।

इसके नियमित अभ्यास से फेफड़े मजबूत हो जाते हैं। आप पूरक रेचक की लम्बाई और समय बढ़ा सकते हैं। इससे अन्य प्राणायाम करने के लिए कुम्भक की शक्ति आ जाती है।

एक बात ध्यान में रखना है कि पूरक उसी नासिका छिद्र से करना है जिससे रेचक किया जाय। प्रथम रेचक के पश्चात् पूरक उसी नासिका छिद्र से किया जाय, परन्तु प्रथम पूरक के पश्चात् उसी से रेचक न किया जाय। एक नासिका छिद्र से पूरक करते हैं तो रेचक दूसरे से होना चाहिए।

प्राणायाम के उच्च अभ्यासों के लिए यह प्रारम्भिक तैयारी है। प्राणायामों के उच्च अभ्यासों के लिए आपके शरीर को तैयार करने में विशेष सहायक होगा।

समवेत प्राणायाम

प्रथम प्राणायाम के अभ्यास के पश्चात् इसका अभ्यास करना चाहिए। इसके अन्य सब नियम प्रथम प्राणायाम की तरह ही हैं।

दोनों नासिका छिद्रों से धीरे-धीरे अधिक से अधिक वायु फेफड़ों में भरिये। १ से ३ सेकेण्ड के लिए श्वास रोकिये। पुनः दोनों नासिकाओं से रेचक कीजिये। उसके बाद ऊपर की तरह ही पूरक कीजिए।

इसे १० या १५ बार दुहराइये।

सहित प्राणायाम

समवेत प्राणायाम की तरह ही पूरक कीजिये। दोनों नासिका छिदों को बन्द कर कुम्भक कीजिये। सुविधापूर्वक जितनी देर श्वास रोक सकें, रोकिये। अब दोनों नासिका छिदों से धीरे-धीरे श्वास छोड़िये।

यह एक आवृत्ति है।

इसका अभ्यास एक बैठक में १० या १२ बार किया जा सकता है।

आरामपूर्वक जितनी देर तक श्वास रोक सकें उतनी ही देर बिना तकलीफ के श्वास रोकिये। प्रत्येक व्यक्ति आराम से कुछ देर के लिए श्वास रोक सकता है। अभ्यास के आगे बढ़ने पर फेफड़ों का लचीलापन बढ़ेगा तथा अधिक देर श्वास रोकने की शक्ति उत्पन्न होगी। इस प्राणायाम में पूरक एवं रेचक क्रिया के साथ कुम्भक क्रिया भी जोड़ी गई है।

नाड़ी शोधन

ध्यान के किसी आसन में बैठिये।

मानसिक रूप से १ से ४ तक गिनती गिनते हुए बांयी नासिका से पूरक कीजिए। दोनों नासिका छिद्र बन्द कर १ से १६ की गिनती तक कुम्भक कीजिये। १ से ८ तक गिनती गिनते हुए दाहिनी नासिका छिद्र से रेचक कीजिये।
समय का अनुपात पूर्वानुसार ४:१६:८ ही रहेगा।

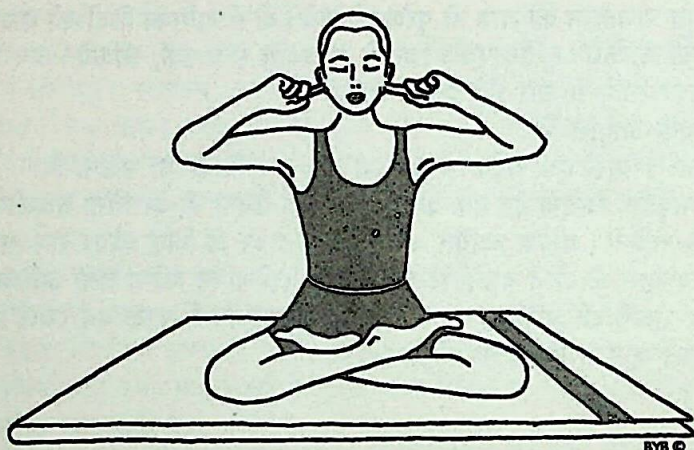
नाड़ी शोधन प्राणायाम तीन प्रकार से होते हैं—

१. उत्तम—पूरक २०, कुम्भक ८०, रेचक ४०
२. मध्यम—पूरक १६, कुम्भक ६४, रेचक ३२
३. कनिष्ठ—पूरक १२, कुम्भक ४८, रेचक २४

यह प्राणायाम नाड़ी का शोधन करता है तथा अशुद्धियों को दूर करता है। इसके अभ्यास से शरीर हल्का हो जाता है। साधक अपनी नाड़ियों एवं शरीर पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त कर सकता है।



भ्रामरी प्राणायाम



BYB ©

ध्यान के किसी भी आसन में बैठिये। प्राणायाम के अभ्यास के लिए मन को तैयार कीजिये। दोनों तर्जनी अंगुलियों से दोनों कानों को बन्द कीजिये। अब धीरे-धीरे पूर्णरूपेण श्वास लीजिये। एक क्षण के लिए श्वास रोकिये। अब मधुमक्खी के समान गुँजन की आवाज के साथ धीरे-धीरे श्वास छोड़िये। गुँजन की आवाज पूर्ण श्वास के बाहर आने तक कीजिये। आवाज करते समय मुँह खुला नहीं रहना चाहिए क्योंकि श्वास छोड़ने की क्रिया नाक से होती है। जिह्वा भी न हिले। गुँजन की आवाज पर ध्यान पूर्णतः केन्द्रित हो। इस आवाज को सुनने का प्रयास करते रहिये। आवाज अविरल गति से हो एवं उसमें एकरूपता हो। आवाज अन्त तक न टूटे, वह अखण्ड हो।

भ्रामरी का अभ्यास एकान्त में, रात्रि में अधिक विलम्ब से या प्रातः काल के प्रथम प्रहर में किया जाना चाहिए।

यह बहुत सरल प्राणायाम है। प्रथम दिन से ही अच्छी तरह इसका अभ्यास किया जा सकता है। इस प्राणायाम के अभ्यास से गले की बीमारियाँ धीरे-धीरे दूर हो जाती हैं। कंठ नलिका मजबूत बनती है तथा आवाज मीठी होती है।

उज्जायी प्राणायाम

ध्यान के किसी भी आसन में बैठ जाइये। आँखें बन्द रखें। श्वास लेते समय सूक्ष्म खरटे की सी आवाज गले से उत्पन्न कीजिये। मुँह बन्द रहेगा तथा श्वसन क्रिया नासिका से होगी।

आवाज निकालने के लिए गले के मूल भाग को तालू से छूते हुए श्वास लें। भाप के इंजन जैसी आवाज करते हुए पूरक कीजिये।

कुछ क्षण श्वास रोक कर पहले की भाँति ध्वनि करते हुए रेचक कीजिये। ध्वनि एक जैसी होनी चाहिये। इसकी १० से १२ आवृत्तियाँ प्रतिदिन की जा सकती है।

यह प्राणायाम उन व्यक्तियों के लिए विशेष लाभप्रद है जिनके टॉन्सिल बढ़ जाते हैं, जुकाम जल्दी हो जाता है, जिन्हें जल्दी इन्फ्लुएँजा एवं ब्रोंकाइटिस की शिकायत हो जाती है। संगीत सीखने वालों के लिए भी यह लाभदायक है। अधिकतर देखा जाता है कि अधिक अभ्यास से उनकी आवाज भारी हो जाती है। कभी-कभी अचानक उन्हें गले में तकलीफ हो जाती है। यदि वे इस प्राणायाम का नियमित अभ्यास करें तो उनका गला स्वस्थ, सुरीला एवं बुलन्द हो जाएगा।

शीतली प्राणायाम

ध्यान के किसी भी आसन में बैठ जाइये।

जीभ को बाहर निकालिये एवं उसे एक नलिका या गोल ट्यूब के रूप में मोड़िये।

धीरे-धीरे श्वास लीजिये ताकि फेफड़े पूर्ण रूप से वायु भरे जा सकें।

अब नासिका से रेचक कीजिये।

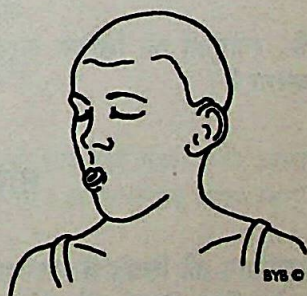
रेचक करते समय जीभ भीतर कर लें।

पुनः जीभ बाहर निकाल कर ट्यूब की आकृति बनाइये एवं पूरक कीजिये।

अब भीतर कर नासिका से रेचक कीजिये।

प्रतिदिन इसकी ८ से १० आवृत्तियों का अभ्यास किया जा सकता है।

इसका अभ्यास गले एवं जीभ की बीमारियों को



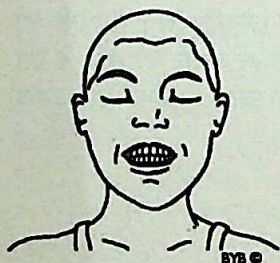
दूर करने के लिए किया जाता है। गले के दर्द एवं टॉन्सिल पर इसका प्रभाव पड़ता है। शीतली, शीतकारी तथा उज्जायी का अभ्यास हकल कर या तुतलाकर बोलने वाले के उपचार के लिये किया जाता है। मुँह में फोड़े हों, जीभ सूखती हो तब इस प्राणायाम का अभ्यास उपचार के रूप से प्रतिदिन करना चाहिए।

शीतली प्राणायाम में पूर्णता प्राप्ति के पश्चात् व्यक्ति भूख-प्यास रोक सकता है। यह जुकाम, अपचन सबको ठीक करता है। यह प्राणायाम रोगियों के लिए वरदान है।

शीतकारी प्राणायाम

इस प्राणायाम में जिह्वा का अग्र भाग तालू को छूता हुआ रहे।

ऊपर के दाँत नीचे के दाँतों पर जमे रहें। ओंठ खुले रहें।



फुफकारने की सी आवाज करते हुए श्वास मुँह से लीजिये। दाँत एवं जीभ अपनी स्थिति में रहें।

उनमें परिवर्तन न हो।

जीभ की दोनों ओर से खुले स्थान से हवा भीतर जाती है।

पूरक के बाद नासिका से रेचक कीजिये।

प्रतिदिन इसकी ८ से १० आवृत्तियाँ कीजिये।

इस प्राणायाम में पूरक मुँह से एवं रेचक क्रिया नाक से होती है। कुम्भक क्रिया नहीं होती।

यह प्राणायाम ठण्डक पैदा करता है तथा मुँह गले, जीभ आदि की बीमारी में लाभदायक प्रभाव डालता

है। स्नायुओं को शिथिल करता है तथा मानसिक स्थिरता एवं शांति प्रदान करता है।

भस्त्रिका प्राणायाम

प्राणायाम की स्थिति में बैठ जाइये। दाहिना नासिका छिद बन्द कर लीजिए। बायें नासिका छिद से धीरे-धीरे गहरी एवं लंबी श्वास लीजिए। अब बायीं नासिका से ही शीघ्रतापूर्वक २० बार श्वसन क्रिया कीजिए। यह क्रिया उदर के प्रसारण एवं आकुंचन के साथ जल्दी-जल्दी हो। अन्तिम बार उसी नासिका से गहरा पूरक कर उसे बंद कर लीजिए। थोड़ी देर के अन्तर्कुम्भक के बाद उसी नासिका से

श्वास छोड़िये। अब दाहिनी नासिका से २० बार जल्दी-जल्दी श्वसन क्रिया कीजिए। अन्तिम बार गहरी श्वास लेकर अन्तर्कुम्भक कीजिए। फिर श्वास छोड़िये।

अब दोनों नासिका छिद्रों से एक गहरा पूरक भर कर २० बार इसी क्रिया को दुहराइये।

यह एक पूर्ण आवृत्ति हुई। इस प्रकार तीन आवृत्तियाँ कीजिये।

कुछ समय तक इस प्रकार अभ्यास के बाद एक बार अंतर्कुम्भक लगाकर जालंधर बंध के साथ भी इसका अभ्यास कर सकते हैं।

ध्यान में रखने योग्य महत्त्वपूर्ण बात यह है कि भस्त्रिका प्राणायाम में श्वास लेते एवं छोड़ते समय हवा की मात्रा एवं दबाव समान रहे। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि नासिका की भित्तियों पर हल्का दबाव पड़े।

भस्त्रिका सबसे महत्त्वपूर्ण प्राणायाम है। जिनके फेफड़े कमजोर हैं या जो बीमार हैं उन्हें धीरे-धीरे इसका अभ्यास करना चाहिए।

इस प्राणायाम के अभ्यास से शरीर को अधिक मात्रा में ऑक्सीजन की प्राप्ति होती है तथा अधिक कार्बनडायाक्साइड बाहर निकलता है। रक्त शुद्ध होता है और रक्त तेजी से तथा अधिक मात्रा में सम्पूर्ण शरीर में संचालित होता है।

इस प्राणायाम से श्वसन सम्बन्धी बीमारियाँ दूर होती हैं। इस उद्देश्य से इसका अभ्यास उचित निर्देशन में किया जाना चाहिए। साधारण स्वास्थ्य के व्यक्ति किताबों में पढ़कर इसका अभ्यास कर सकते हैं। इससे कमजोर फेफड़ों को स्वास्थ्य एवं बल प्राप्त होता है। यह नसों की कमजोरी को दूर करता है। इसके अभ्यास से उष्णता बढ़ती है, अतः इसका उच्च अभ्यास ठंड के दिनों में करना चाहिए।

केवली प्राणायाम

ध्यान के किसी भी आसन में बैठ जाइये। नाक से धीरे-धीरे गहरी लंबी श्वास लेते हुए मानसिक रूप से 'सो' का उच्चारण कीजिये। श्वास छोड़ते समय 'हम्' शब्द का मानसिक उच्चारण कीजिये।

इस प्रकार मानसिक रूप से 'सोहम्' मन्त्र उच्चारित कीजिये।

यह केवली प्राणायाम कहलाता है। इस प्राणायाम से मानसिक एकाग्रता की प्राप्ति होती है।

प्लाविनी प्राणायाम

ध्यान के किसी भी आसन में बैठ जाइये।

पानी पीने की तरह मुँह से ही वायु भीतर लीजिये।

जब पेट वायु से भर जाये तब मुँह से ही वायु को बाहर निकाल दें।

यह सभी प्रकार की पेट की बीमारियों को दूर करता है। इससे पाचन क्रिया बढ़ती है। यह 'हिस्टीरिया' के रोग को दूर करने में सहायक होता है।

चतुर्थ प्राणायाम

ध्यान के किसी भी आसन में बैठ जाइये।

दोनों नासिका छिद्रों से समान गति में पूरक-रेचक कीजिए। पूरक-रेचक की गति एवं अवधि समान रखने के लिए मन्त्र जप या गिनती का सहारा लिया जा सकता है।

उदाहरणार्थ—यदि १ से ४ गिनती गिनने तक पूरक करें तो १ से ४ गिनती तक ही रेचक कीजिये।

इसका अभ्यास प्रतिदिन १५ से २० मिनट तक करें।

उपसंहार

विभिन्न प्रकार के प्राणायामों का वर्णन किया गया है। प्रतिदिन सभी प्राणायामों का अभ्यास करना आवश्यक नहीं है। इसका अभ्यास प्रतिदिन बढ़ाना चाहिये। अच्छा स्वास्थ्य बनाये रखने के लिए प्रतिदिन १० मिनट का अभ्यास बहुत है। साधक को अपनी योग्यतानुसार निश्चित करना चाहिए कि कौन-कौन से प्राणायामों का अभ्यास उसके लिए आवश्यक है।

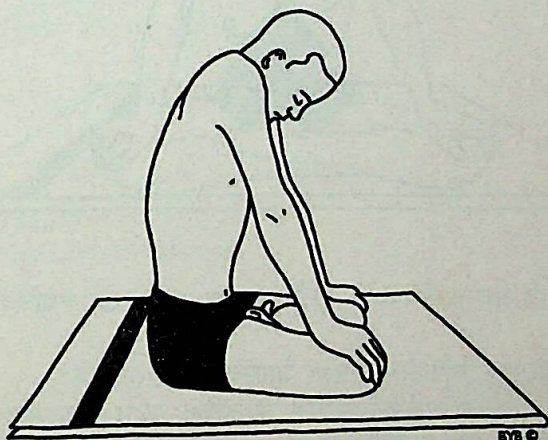
प्राणायाम के समय निकले हुए पसीने को शरीर पर मालिश करना चाहिए। गलत धारणाओं को मन से निकाल दीजिये। प्रतिदिन २-३ प्राणायाम नियमित रूप से करने चाहिए। तब आप स्वयं ही उनके लाभों का अनुभव करेंगे।

बन्ध

‘बन्ध’ आन्तरिक अंगों के अभ्यास है। शरीर में से सम्बन्ध रखने वाले निष्क्रिय अंगों के अभ्यास एवं उन पर नियंत्रण पाने के लिए यह एक यौगिक क्रिया है। इनका नाड़ी-जाल पर हितकर प्रभाव पड़ता है। अनेक अंगों को सक्रिय एवं सुचारु बनाने में इनसे मदद मिलती है। इनका मनोवैज्ञानिक एवं शारीरिक लाभ अपूर्व है।

योग में चार प्रकार के बन्धों का वर्णन है—मूल, जालन्धर, उड्डियान एवं महाबन्ध।

जालन्धर बन्ध

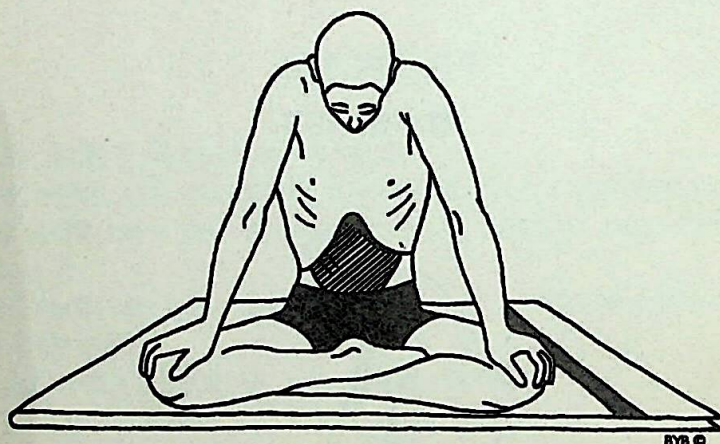


आप पद्मासन या सिद्धासन में बैठ जाइये। खड़े होकर भी इसका अभ्यास कर सकते हैं। हाथों को घुटनों के ऊपर रखिये। सम्पूर्ण शरीर को शिथिल कीजिये। दीर्घ पूरक के बाद अन्तरंग कुम्भक कीजिये। सिर को सामने झुकाइये तथा ठुड़ी की छाती पर दबाइये। हाथों पर बल डालते हुए उन्हें अचल अवस्था में रखिये। दोनों कंधों को एक साथ ऊपर उठाकर कुछ सामने रखिये। इससे हाथ स्थिर रहेंगे। यह अंतिम अवस्था है। श्वास की क्षमतानुसार इस अवस्था में रुकिये।

अब कंधों को शिथिल कीजिये, हाथों को मोड़कर सिर को ऊपर उठाइये। धीरे-धीरे रेचक कीजिये। सामान्य श्वसन के बाद पुनरावृत्ति कीजिये।

जालन्धर बन्ध थॉयराइड ग्रंथि के कार्यों को नियंत्रित करता है। इसी ग्रंथि के कार्यों पर शारीरिक विकास निर्भर रहता है। यह 'बन्ध' गले की किसी भी प्रकार की खराबी दूर करने में महत्वपूर्ण योग देता है।

उड्डियान बन्ध



ध्यान के किसी आसन में बैठिये। घुटने भूमि पर सटाये रखें। हथेलियों को घुटनों पर रखिये।

दीर्घ रेचक के बाद बहिर्कुम्भक तथा जालन्धर बन्ध लगाइये।

अब उदर की मांसपेशियों को अधिक से अधिक ऊपर तथा भीतर की ओर संकुचित कीजिये। यह पूर्णवस्था है।

जब तक आराम से रह सकते हैं, तब तक इस अवस्था में रहिये। अब क्रमशः उदर की पेशियों तथा जालन्धर बन्ध को शिथिल कीजिये। उसके बाद पूरक कीजिये। श्वसन क्रिया सामान्य होने पर पुनः अभ्यास प्रारम्भ कीजिये।

लाभ—इसके अभ्यास से अजीर्ण दूर होता है। पाचन क्रिया बढ़ती है। आंत की खराबी एवं कृमि दूर होते हैं। यकृत एवं मूत्रसंस्थान को क्रियाशील बनाता है। नाभि प्रदेश में स्थित मणिपुर चक्र के लिए उत्प्रेरक का कार्य करता है।

मूल बन्ध

सिद्ध आसन या सिद्धयोनि आसन में बैठ जाइये। पूरक कीजिये और मूलाधार पिंड क्षेत्र की पेशियों को संकुचित कीजिये। इस अवस्था में जब तक आराम से संभव हो रुकिये। अब रेचक कीजिये और आकुंचन ढीला कीजिये।

लाभ—मूल अवरोधिनी पेशियों को मजबूत बनाता है। मूत्र संस्थान और यौन अंगों के गड़बड़ियों को दूर करता है। नाड़ियों और पेशियों को सबल बनाता है।

महाबन्ध

ध्यान के किसी आसन में बैठिये।

सिद्धासन या पद्मासन उत्तम हैं।

जालन्धर बन्ध लगाइये।

अब क्रमशः उड्डियान बन्ध एवं मूलबन्ध लगाइये।

निम्न चक्रों पर अपनी चेतना को ले जाइये।

मानसिक रूप से उनके नामों का उच्चारण निम्नवत् कीजिये। (चित्र में छोटे-छोटे गोल वृत्तों का अवलोकन भी कीजिये)

क. मूलाधार

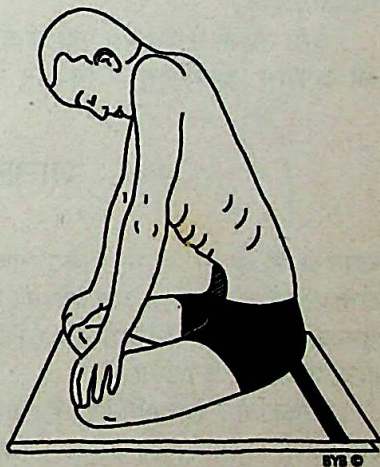
ख. मणिपुर

ग. विशुद्धि

क्रमशः प्रत्येक चक्र पर कुछ सेकेण्ड अपनी चेतना को स्थिर रखिये।

विशुद्धि के पश्चात् पुनः चेतना को मूलाधार पर ले आइये और क्रिया की पुनरावृत्ति कीजिये।

जब तक कुम्भक लगा सकें, उपरोक्त क्रिया कीजिये। अब मूलबन्ध शिथिल कीजिये। फिर उड्डियान बन्ध मुक्त कीजिये। अन्त में जालन्धर बन्ध को हटाइये। धीरे-धीरे पूरक कीजिये।



एक बार सामान्य प्रश्वास क्रिया के उपरान्त महाबन्ध का अभ्यास पुनः कीजिये।

तीनों बन्धों के लिए ऊपर दिये लाभ की इससे भी प्राप्ति होती है। आत्मशक्ति के प्रवाह को उत्प्रेरित करने तथा ध्यान के पूर्व मन को अन्तर्मुखी बनाने के लिए एक शक्तिशाली अभ्यास है। अतः आध्यात्मिक साधकों के लिए विशेष लाभप्रद है। अन्तःस्रावी ग्रंथि के स्राव पर काबू रखता है। स्वास्थ्य एवं शारीरिक बल प्रदान करता है।

मुद्रा

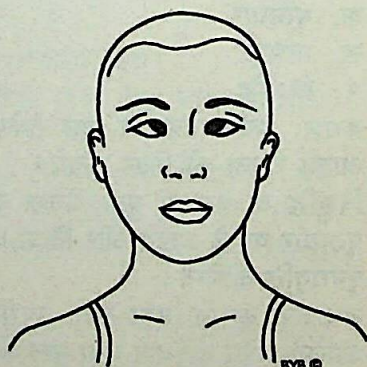
‘मुद्रा’ ग्रंथियों को क्रियाशील बनाने एवं छिपी हुई शक्तियों के केन्द्रों को सक्रिय बनाने की प्रक्रिया है। इसकी उपयोगिता के दो क्षेत्र हैं। प्रथम है शारीरिक तथा द्वितीय है मानसिक। नाड़ियों से सम्बन्धित निष्क्रिय अंगों को नियंत्रित की यह एक उत्तम विधि है। अपनी आन्तरिक यात्रा की कामना करने वाले व्यक्ति तभी उन्नति कर सकते हैं जब उन्होंने मुद्राओं के अभ्यास में पूर्णता प्राप्त कर ली हो। अनुभव से यह ज्ञात हुआ है कि मुद्राएँ बहुत प्रभावशाली एवं लाभदायक हैं।

घेरंड संहिता में कुल २५ मुद्राओं का वर्णन किया गया है, जिनमें से अधिकांश का अभ्यास योग्य गुरु के निर्देशन में किया जा सकता है।

शाम्भवी मुद्रा

ध्यान के किसी भी आसन में बैठ जाइये। दोनों आँखों से ऊपर की ओर देखिये। दृष्टि भ्रूमध्य पर रखिये। विचारों को रोकिये। स्वयं पर ध्यान लगाइये।

इसका नाम शाम्भवी मुद्रा है। इसके अभ्यास से श्वास एवं विचारों पर नियंत्रण होता है। कुछ समय में ही मस्तिष्क विचार-रहित हो जाता है एवं आध्यात्मिक जगत में प्रवेश सरल हो जाता है। कठिन मार्गों को पार करने के लिए यह एक महत्वपूर्ण विधि है।



आकाशी मुद्रा

ध्यान के किसी आसन में बैठिये। शाम्भवी मुद्रा कीजिये। जिह्वा को मोड़कर तालु से स्पर्श कीजिये।

आकाश में दृष्टि एकाग्र कीजिये।

आकाशी मुद्रा एक बहुत ही आश्चर्यजनक अभ्यास है। इससे कई बीमारियाँ ठीक हो जाती हैं। जब जीभ को ऊपरकी ओर मोड़ा जाता है एवं इस स्थिति में कुछ देर रखा जाता है तब गुप्त ग्रन्थियों से रस स्रावित होने लगता है। इस रस को निगल जाना चाहिए। यह रस पेट के लिए एवं युवावस्था कायम रखने के लिए बहुत फायदेमंद है। तालू प्रदेश में एक बहुत ही महत्वपूर्ण यौगिक केन्द्र है। अतः जिह्वा द्वारा तालू को स्पर्श करने से आध्यात्मिक उन्नति होती है।

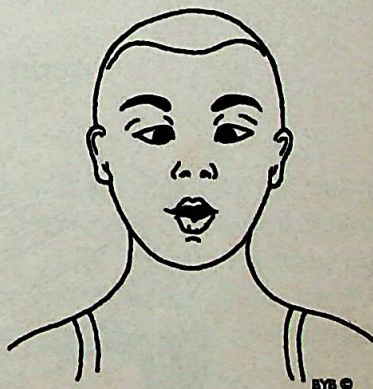
काकी मुद्रा

ध्यान के किसी आसन में बैठ जाइये। ओठों से एक सँकरी नली बनाइये। नासिकाग्र दृष्टि कीजिये।

मुँह से धीरे-धीरे पूरक कीजिये।

ओठों को परस्पर बन्द करते हुए नासिका से धीरे-धीरे रेचक कर पुनः क्रिया को दुहराइये।

मुँह से भीतर जाने वाली वायु का प्रवाह स्पर्श मुँह की दीवारों के साथ होता है तथा अनेकों बीमारियों को रोकने या दूर करने में यह अभ्यास मदद करता है। साथ ही नासिकाग्र-दृष्टि के लाभ की प्राप्ति होती है। यह समस्त शारीरिक संस्थानों को शीतलता प्रदान करता है।



खेचरी मुद्रा

जिह्वा को ऊपर की ओर मोड़िये।

जिह्वा को तालू प्रदेश में पीछे की ओर जितना संभव हो धीरे-धीरे ले जाइये। जितनी देर तक संभव हो रुकिये। तकलीफ अनुभव होने पर कुछ क्षण के लिये छोड़ दीजिये।

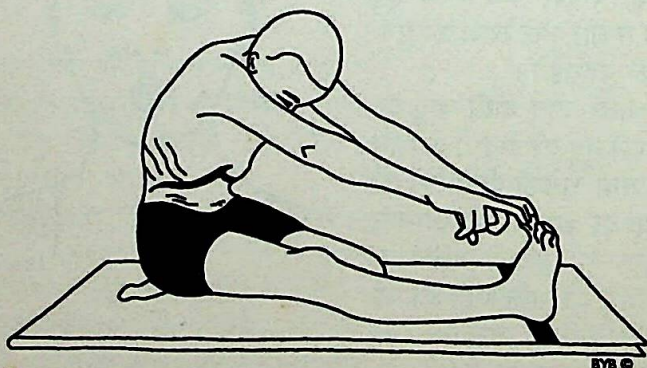
दृष्टि भ्रूमध्य में रखिये।

इसके लिए धैर्यपूर्वक लम्बे अभ्यास की आवश्यकता है। खेचरी का अभ्यास करने वालों को भूख, प्यास, थकान आदि की तकलीफ नहीं होती। उनका शरीर शुद्ध हो जाता है। किसी प्रकार की बीमारी या उम्र का प्रभाव उन तक नहीं पहुँचने पाता।

भुजंगिनी मुद्रा

ध्यान के किसी आसन में बैठिये। मुँह को थोड़ा खोलकर एवं फैलाकर वायुपान कीजिये। भुजंगिनी मुद्रा के अभ्यास द्वारा पेट की हर प्रकार की खराबी एवं पुरानी बीमारी दूर की जा सकती है।

महाबेध मुद्रा



दाहिने पैर की एड़ी को गुदाद्वार के नीचे रखिये।
बायें पैर को सामने फैलाते हुए बैठ जाइये।

पूरी तरह पूरक कीजिये ।

दीर्घ रेचक कीजिये ।

बहिर्कुम्भक लगाइये ।

सामने झुक कर दोनों हाथों से फैले हुए पैर के अंगूठे को पकड़िये ।

जालन्धर बन्ध, मूलबन्ध तथा उड्डियान बन्ध लगाइये ।

नासिकाग्र दृष्टि कीजिये ।

क्रमशः मूलाधार, मणिपुर एवं विशुद्धि चक्र पर ध्यान कीजिये ।

प्रत्येक चक्र पर एक सेकेण्ड अपनी चेतना को रखने के उपरान्त दूसरी आवृत्ति में चेतना को निम्न प्रकार घुमाइये ।

१. मूलाधार

२. मणिपुर

३. विशुद्धि

आरामदायक स्थिति तक श्वास बाहर रोककर चेतना को घुमाइये । अब क्रमशः उड्डियान बन्ध, मूलबन्ध और अन्त में जालन्धर बन्ध छोड़िये । आँखों को साधारण स्थिति में लाइये ।

सारांश

नियमित अभ्यास करने वालों को इन सभी मुद्राओं से शक्ति एवं स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है । सभी मुद्राएँ महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली हैं । यदि आप अभ्यास करेंगे तो स्वयं इनके फायदों से परिचित हो जायेंगे । मुद्राओं से होने वाले लाभ शंका रहित हैं, वैज्ञानिक हैं । उनका उद्देश्य शारीरिक गड़बड़ी को दूर करना है । इस प्रकार स्वभावतः अंगों की अनियंत्रित क्रियाओं को नियंत्रित कर उनका उपचार किया जाता है ।

हठयोग

‘हठ’ योग का तात्पर्य आसन नहीं है। ‘ह’ प्रतीक है चन्द्र या इड़ा नाड़ी अथवा मानसिक ऊर्जा का और ‘ठ’ प्रतीक सूर्य या पिंगला नाड़ी अथवा प्राणिक ऊर्जा का हठयोग अनुकम्पी एवं परानुकम्पी तन्त्रिका-तन्त्र के परस्पर प्रतिकूल स्वभाव में समस्वरता स्थापित करने का साधन है।

सुषुम्ना केन्द्रीय तन्त्रिका-तन्त्र है। यदि तन्त्रिका-तन्त्र में शुद्धता, शान्ति, समस्वरता और शक्ति रहती है तो आध्यात्मिक चक्र जाग्रत होते हैं।

हठयोग में छः शुद्धि प्रक्रियायें आती हैं : नेति, धौति, बस्ति, कपालभाति, त्राटक और नौली। इन्हें एक साथ षट्कर्म भी कहते हैं। हठयोग के ये अभ्यास शरीर में एकत्र विषाक्त पदार्थों का निष्कासन करने में सहायक होते हैं, परन्तु इनका अभ्यास किसी विशेषज्ञ से ही सीखना चाहिए।

नेति

हठयोग का प्रथम अभ्यास है नेति। नेति करते समय नासिका की झिल्लियों पर ऐसा प्रभाव पड़ता है जिससे संवेदना सम्पूर्ण मस्तिष्क में स्पन्दित हो जाती है तथा समस्त अवरोधों और विषादों को हटाकर सम्पूर्ण तन्त्र को जाग्रत कर देता है।

जल से नेति, जिसे जल-नेति कहते हैं, एक विशेष प्रकार के पात्र (नेति लोटा) की सहायता से किया जाता है। इस लोटे में हलका गरम जल लेते हैं और उसमें आधा चम्मच नमक मिला लेते हैं।

मुँह से श्वास लीजिये। नेति लोटे की टोंटी को बाँयी नासिका छिद्र में लगाइये और सिर को थोड़ी दायीं ओर झुका दीजिये जिससे कि जल आसानी से दायीं नासिका छिद्र से गिरने लगे। फिर इसे दाहिने नासिका छिद्र से कीजिये। इसके पश्चात् अच्छी तरह सुखा लेने के लिए थोड़ा भस्त्रिका प्राणायाम कीजिये, परन्तु विशेष जोर मत लगाइये। शशांक आसन भी कर सकते हैं।

इसके अभ्यास से सर्दी, नासिका झिल्लियों की सूजन समाप्त हो जाती है जल नेति के बाद दूध का भी प्रयोग किया जा सकता है। ऐसा देखा गया है कि इससे आँख आना, मस्तिष्क विषाद और नासिका के संक्रमण ठीक हो जाते हैं।

डाक्टर तो नासिका मार्ग का कॉन्ट्राइजेशन का सामान्यतया सुझाव देते हैं, पर नेति की इस सरल विधि से नाक के रोग दूर हो जाते हैं। आप रबर का कैथेटर ले लीजिये। उसकी एक छोर नासिका छिद्र में घुसा कर मुँह में निकाल लीजिये और तत्पश्चात् दोनों छोरों को अँगुलियों से पकड़कर थोड़ा आगे पीछे कीजिये जिससे नासिका में हल्का घर्षण हो। पुनः दूसरे नासिकाछिद्र में भी कीजिये। यह सूत्र नेति है।

भारतीय महिलायें सर्दी के उपचार के लिए नासिका छिद्रों में हल्के गरम तेल की बूँदें डालती हैं। इस तेल से छींक आती है बन्द नाक खुलती है और नासिका मार्ग की श्लैष्मिक कला में चिकनापन आ जाता है। चेहरे के लकवे में नाक से घी लेना अत्यन्त लाभदायक पाया गया है।

धौति

यह आंतरिक संस्थानों की धुलाई की क्रिया है। इसके कई प्रकार हैं।
मूल धौति—

शरीर के प्रमुख अंग शीर्ष भाग एवं उससे सम्बन्धित सूक्ष्म अंगों की सफाई की क्रिया को मूल धौति कहते हैं। इन अंगों का मस्तिष्क से घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतः इस क्रिया का मस्तिष्क एवं स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इसके अन्तर्गत निम्न क्रियाएँ आती हैं। यह ग्रीवा की ऊपरी अंगों के सफाई की क्रिया है।

१. दन्त मूलधौति—इसमें दाँत धोने का महीन चूर्ण अथवा नीम का दातुन का प्रयोग किया जाता है।

२. जिह्वा मूल धौति—अँगुलियों से रगड़ कर जिह्वा की सफाई।

३. कर्ण धौति—उँगली से कानों की सफाई।

४. कपाल रन्ध्र धौति—सिर एवं खोपड़ी की सफाई, तालू पर ठण्डा पानी देना।

५. चक्षु धौति—जल द्वारा नेत्रों की सफाई।

बारिसार धौति—

वारि का अर्थ होता है पानी और धौति याने धोना। इस क्रिया में पानी से सफाई की जाती है। इसकी दो क्रियाएँ हैं।

१. कुञ्जल—इस क्रिया में कुनकुने नमकीन पानी द्वारा अमाशय की पूर्ण धुलाई की जाती है। करीब दो लीटर नमकीन जल पीकर सम्पूर्ण जल को उल्टी करके पुनः बाहर निकाला जाता है। पानी पीकर जीभ की जड़ को अँगुलियों से धीरे से रगड़ने पर सम्पूर्ण जल बाहर निकल जाता है। यह तरीका आसान है। एक दिन में ही इसे सीखा जा सकता है। इस क्रिया के बाद खान-पान में सावधानी रखी जाए अन्यथा इस क्रिया से मिलने वाले लाभ नहीं मिलेंगे।

२. शंख प्रक्षालन—यह आंतरिक अंगों की सफाई की क्रिया है। यह क्रिया करीब ५ लीटर या अधिक कुनकुने नमकीन पानी के द्वारा की जाती है। इस क्रिया में पानी पीकर उसे मलद्वार द्वारा बाहर निकाला जाता है। इस क्रिया को प्रशिक्षित व्यक्ति से सीखना चाहिए।

वातसार धौति—

वातसार धौति एक विशेष प्रक्रिया है। इस क्रिया में 'प्लाविनी' प्राणायाम के द्वारा वायु पेट में भर ली जाती है। अमाशय में इसे कुछ देर रोका जाता है। तब सम्पूर्ण वायु को मलद्वारा या मुँह से बाहर निकाला जाता है। इस क्रिया में भीतर की अशुद्ध वायु बाहर निकल जाती है।

अग्निसार क्रिया—

अग्निसार क्रिया एक भिन्न प्रकार की क्रिया है। इसमें पेट का व्यायाम होता है। इसका उद्देश्य अँतड़ियों को उदीप्त करना है। इसका अभ्यास वज्रासन में किया जाता है। श्वास अन्दर लेकर पेट के सम्पूर्ण आंतरिक अंगों का प्रसारण एवं संकुचन किया जाता है।

वस्त्र धौति—

वस्त्र धौति पेट की सफाई एवं उसे सक्रिय करने की क्रिया है। वस्त्र की एक लम्बी पट्टी को धीरे-धीरे सावधानीपूर्वक मुख द्वारा अमाशय में डाला जाता है। तब नौलि क्रिया के द्वारा उसे पेट में घुमा कर बाहर निकाल दिया जाता है। इस क्रिया को प्रशिक्षित व्यक्ति से ही सीखना चाहिए।

नौलि

अग्निसार के नियमित अभ्यास से उड्डियान बंध सरल हो जाता है। उड्डियान के अभ्यास में पूर्णता आ जाने पर नौलि आसानी से की जा सकती है। उड्डियान के अभ्यास के बाद पेट की आंतरिक मांसपेशियों को ऊपर की ओर खींचने का अभ्यास करना चाहिए। फिर धीरे-धीरे पेट को घुमाना चाहिए।

किसी पुस्तक के सहारे नौलि सीखना आसान नहीं है। इसका अभ्यास योग्य अनुभवी गुरु के निर्देशन में सीखना चाहिए।

बस्ति

बस्ति को यौगिक एनिमा कहा जा सकता है। इस क्रिया की विशेषता यह

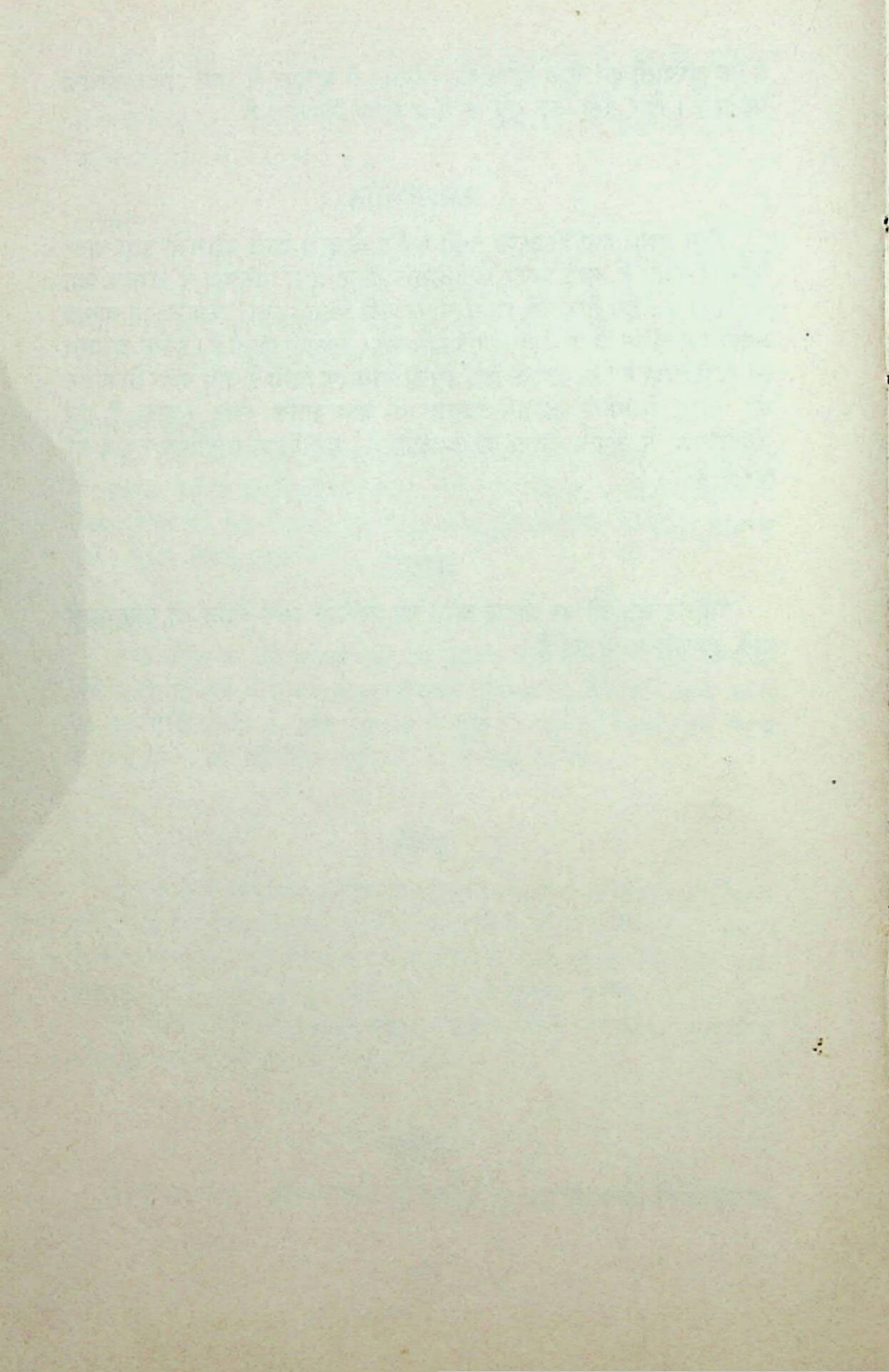
है कि अभ्यासी को नौलि क्रिया की सहायता से मलद्वार से पानी अन्दर खींचना पड़ता है। फिर यही जल मल के साथ बाहर निकलता है।

कपालभाति

जिस प्रकार हवा निकालने वाली मशीन के द्वारा कमरे की गन्दी हवा बाहर निकाली जाती है, उसी प्रकार कपालभाति क्रिया द्वारा मस्तिष्क में हलचल पैदा की जाती है। इस क्रिया में श्वास भीतर नहीं लिया जाता। फेफड़ों को ताकत लगाकर संकुचित किया जाता है एवं हवा बाहर निकाली जाती है। इसेक अभ्यास की दो विधियाँ हैं। हठयोग के लिए इसकी साधारण विधि है वायु बाहर निकालने की, परन्तु राजयोगी अन्तिम प्रश्वास के बाद श्वास बाहर रोकता है एवं 'चिदाकाश' में अपनी चेतना को ले जाता है। यह क्रिया मानसिक तनाव दूर करती है।

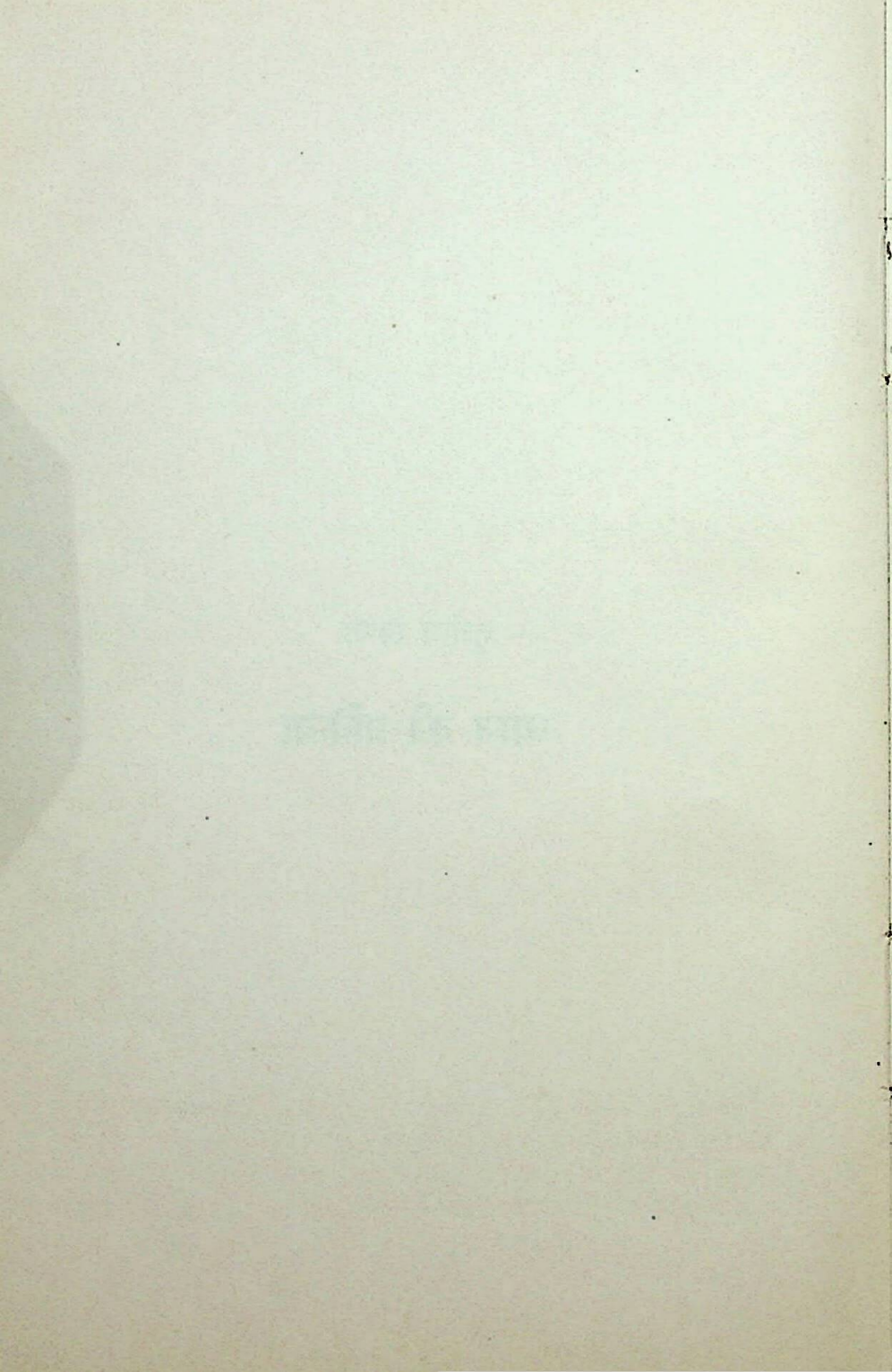
त्राटक

विभिन्न वस्तुओं पर त्राटक करने की विधियाँ आगे ध्यान की प्रक्रियाओं वाले अध्याय में दी गई हैं।



तृतीय खण्ड

ध्यान की प्रक्रिया



ध्यान की प्रक्रियाएँ

ध्यान की प्रक्रिया द्वारा साधक जब ध्यान की वस्तु के साथ एक हो जाता है तब इसे 'ध्यानावस्था' कहते हैं। पूर्ण एकाग्रता की प्राप्ति तभी होती है जब ध्यान करने वाला व्यक्ति, ध्यान की प्रक्रिया एवं ध्यान की वस्तु तीनों का एक दूसरे में तादात्म्य हो जाता है।

पूर्ण एकाग्रता की अवस्था में ही सत्य का उद्घाटन होता है। सभी प्रकार का ज्ञान व्यक्ति के अन्तर्मन में निहित है। पर बाह्य वस्तुओं का प्रभाव हम पर इतना अधिक है कि अन्दर का ज्ञान हमारे मस्तिष्क तक आ नहीं पाता और हम उसके प्रति ग्रहणशील नहीं बन पाते। सकारण या अकारण ही मानव मस्तिष्क दिन-रात बाह्य जगत की वस्तुओं के चारों ओर घूमता रहता है। जब तक मन बहिर्मुखी है तब तक वह अन्तर्मुखी नहीं बन सकता। बचपन से ही हमारे मन को बहिर्मुखी रहने की आदत है। इस प्रकार मन कुसंस्कारों को ग्रहण करता है और सांसारिक बातों के अतिरिक्त अन्य बातों के चिंतन के लिए तैयार नहीं रहता।

इस प्रकार के बहिर्मुखी मन के द्वारा ज्ञान की प्राप्ति सम्भव नहीं। अतः अपने अन्दर होने वाली क्रियाओं के प्रति अपनी चेतना को जागरूक बना लेने के बाद ही अन्य साधना सम्भव है।

इसके लिये योग में बहुत ही सुन्दर, सरल एवं प्रभावशाली विधियाँ हैं, जिनके नियमित अभ्यास से आपकी चेतना स्वयमेव उच्च अभ्यासों की ओर प्रेरित होगी।

अपने स्वरूप पर ध्यान

प्रत्याहार, धारणा तथा ध्यान के किसी भी अभ्यास के लिए सर्वप्रथम शरीर का स्थिर रहना जरूरी है। जिस प्रकार हिलते हुए बर्तन में जल स्थिर नहीं रह सकता, उसी प्रकार शरीर के हिलते-डूलते रहने से मन भी स्थिर नहीं रह सकता। इसीलिये योग में शरीर को स्थिर बनाना बहुत आवश्यक है। इसके लिये अपने

स्वरूप या शरीर पर ध्यान बहुत ही लाभप्रद, सरल और अभ्यास है। इस साधना के लगातार अभ्यास से ध्यान के समय अपने शरीर को ज्यादा स्थिर रखने में आप सफलता प्राप्त करेंगे।

आप ध्यान के किसी आसन—पद्मासन, सिद्धासन, सुखासन या स्वस्तिकासन में आराम के साथ स्थिरतापूर्वक बैठ जाइये। रीढ़ की हड्डी सीधी रखें। सिर, गर्दन तथा धड़ एक सीध में रखें। हाथों को घुटने पर रख लें। आँखों को बन्द कर लें। अपने शरीर पर ध्यान कीजिये।

मानसिक नेत्रों से लगातार अपने शरीर को देखते जाइये, मानो आप किसी आइने के सामने बैठकर अपने को देख रहे हों। ध्यान करते समय केवल इस बात पर ध्यान रखें कि कहीं आपका शरीर हिल तो नहीं रहा। लगातार अपने शरीर का अवलोकन करते जाइये।

शरीर का कोई भी अंग जरा भी हिलने न पाए, इस बात के लिए पूर्ण रूप से चौकन्ने रहें। शरीर हिलाने की प्रवृत्ति को दृढ़तापूर्वक रोकें। शरीर को चट्टान की तरह अचल तथा अटल रखिये।

१० मिनट से शुरू कर धीरे-धीरे ३ घंटे तक इस अभ्यास को बढ़ाया जा सकता है।

नाद संचालन या ॐकार ध्वनि पर ध्यान

ध्यान के किसी भी सुखद आसन में बैठ जाइये।

शरीर को स्थिर, सीधा तथा शिथिल रखिये।

आँखों को बन्द कर लीजिये।

धीरे-धीरे श्वास अन्दर लीजिये।

पूर्ण चेतना के साथ मूलधार में स्थापित कर श्वास छोड़ते हुए मुंह से ॐकार की ध्वनि निकालिए और ऐसी कल्पना कीजिये कि ध्वनि मूलधार से उठकर रीढ़ की हड्डी से होते हुए सहस्रार तक जा रही है। म् अ अ कहते हुए, अन्त में ध्वनि को सहस्रार में समाप्त कीजिये।

ॐकार की ध्वनि को एकाग्रतापूर्वक सुनते भी रहिये।

पुनः धीरे-धीरे लम्बी गहरी श्वास लेते हुए मन को मूलधार में स्थापित कर लीजिये तथा फिर पहले जैसे ॐकार की ध्वनि उठाकर ध्वनि को सुनते हुए मूलधार से सहस्रार तक चेतना को ले जाइये और म् अ अ.....की आवाज के साथ सहस्रार में पहुँचकर ध्वनि को को समाप्त कीजिये।

इस तरह लगातार इस अभ्यास को दुहराते जाइए। १३ बार से लेकर आधे घंटे तक इस अभ्यास को किया जा सकता है।

ध्यान के किसी भी अभ्यास के प्रारम्भ में इसे ३ से १३ बार कीजिये।
 ॐकार की ध्वनि से मन की बिखरी हुई वृत्तियाँ सिमटती हैं और ध्यान के अभ्यास के लिये अपेक्षित मानसिक भूमिका तैयार होती है।

प्राण संचालन या श्वास पर ध्यान

प्राण और मन का आपस में बहुत ही गहरा सम्बन्ध है। प्राण के सूक्ष्म स्पन्दनों से ही मन गतिशील होता है। मन को वश में करने के लिए प्राण को वश में करना अत्यन्त आवश्यक है। यही कारण है कि पतंजलि के अष्टांग योग या राजयोग में प्रत्याहार, धारणा और ध्यान के अभ्यास के पूर्व प्राणायाम के अभ्यास का विधान है। प्राणायाम के अभ्यासों के सिवाय अनेकों ऐसे अभ्यास भी हैं जो प्राणायाम के अभ्यास न होते हुए भी मन को एकाग्र बनाने में बहुत मददगार हैं।

यहाँ हम उन्हीं अभ्यासों की विधियों का वर्णन करेंगे।

क. ध्यान के आसन में सुखपूर्वक बैठ जाइये। आँखों को बन्द कर लीजिये। अब अपने अन्दर आने वाली श्वास और बाहर आने वाली श्वास को देखते जाइये। हर अन्दर आने वाली श्वास और बाहर निकलने वाली श्वास का पूर्ण एकाग्रता के साथ अवलोकन करते चलिए।

केवल श्वासों पर ही अपना ध्यान केन्द्रित रखिये। एक भी श्वास आपकी सजगता से बच कर न अन्दर जाने पाए और न बाहर आने पाए। श्वासों पर ध्यान करते जाइये कि श्वास अन्दर जा रही है, श्वास बाहर निकल रही है।

ख. स्थिर आसन में बैठ जाइये। आँखें बन्द कर लीजिये। श्वास लेते समय ऐसी कल्पना कीजिये कि श्वास दायीं नासिका से शुरू होकर दोनों भौंहों के बीच के स्थान से होते हुए बायीं नासिका द्वारा बाहर निकल रही है।

दुबारे जब श्वास अन्दर लीजिये तो ऐसी कल्पना कीजिये कि श्वास बाँयीं नासिका से अन्दर जा रही है और भ्रूमध्य से होते हुए दाहिनी नासिका द्वारा बाहर निकल रही है।

इसी क्रम को लगातार चार बार दुहराइये।

दाहिनी नासिका से श्वास अन्दर लेना, भ्रूमध्य तक श्वास को ले जाना फिर भ्रूमध्य से बाँयीं नासिका द्वारा श्वास को निकाल देना।

फिर बाँयीं नासिका से श्वास लेना और भ्रूमध्य तक उसे ले जाकर दाहिनी नासिका से बाहर निकाल देना।

एक नासिका से श्वास लेना, दूसरी से निकाल देना, दूसरी से श्वास लेना और पहली से निकालना। यह १ राउण्ड हुआ।

इस प्रकार ४ राउण्ड होने के बाद ५वीं बार में दोनों नासिका से श्वास अन्दर लेना एवं भ्रूमध्य में श्वास-प्रवाह को केन्द्रित करना और फिर दोनों नासिकाओं द्वारा श्वास बाहर निकाल देना।

छठवीं बार से फिर पहले ही के समान क्रम से एक तरफ से श्वास लेकर दूसरी तरफ से छोड़ देना। पुनः जिधर से श्वास छोड़ा है उधर से श्वास लेकर पहली से छोड़ देना। ६, ७, ८, ९वें राउण्ड में एक नासिका से श्वास लेना और दूसरी से छोड़ना। दसवें राउण्ड में दोनों नासिका से श्वास लेकर दोनों ही से छोड़ना। ११, १२, १३, १४ में फिर एक से श्वास लेकर दूसरी से छोड़ना और दूसरी से लेकर पहिली से छोड़ना। १५वें राउण्ड से फिर दोनों नासिका से श्वास लेकर दोनों से बाहर निकालना।

इसी क्रम से १०० की गिनती तक अभ्यास करें।

ध्यान श्वास लेने तथा छोड़ने में नासिकाग्र से भ्रूमध्य तथा भ्रूमध्य से नासिकाग्र तक धूमता रहेगा।

गिनती पर पूरा ध्यान रखें, गलती होने पर पूरी क्रिया फिर नये सिरे से शुरू करें।

शब्द संचालन

ध्यान के किसी सुखद आसन में स्थिर बैठ जाइये।

आँखें बन्द कर लीजिये।

पहले प्राण संचालन विधि—(क) की तरह श्वासों पर ध्यान करें।

फिर अन्दर जाने वाली श्वास में 'सो' की भावना तथा बाहर निकलने वाली श्वास में 'हं' की भावना करते हुए श्वास को कंठ से नाभि तक वापस लाएँ। जिस प्रकार पानी पतली नली में धीरे-धीरे ऊपर की ओर उठता है उसी प्रकार 'सो' की भावना पर श्वास को नाभि से कंठ तक ले जाना चाहिए तथा 'हं' की भावना करते हुए कंठ से नाभि तक उतारना चाहिए।

इससे भी ध्यान रहे, 'सो' और 'हं' का भी ख्याल रहे।

नाभि से कंठ तक चेतना के चढ़ने तथा उतरने का भी ख्याल रहे।

श्वास लेने व छोड़ने में जो सूक्ष्म ध्वनि पैदा होती है उसका भी ख्याल रहे।

श्वास लेने और छोड़ने में जो सूक्ष्म ध्वनि पैदा होती है उसका भी ख्याल कीजिये।

इस क्रिया को यांत्रिक ढंग से न कर पूरी सजगता के साथ कीजिये।

इस अभ्यास को ४९ राउण्ड कीजिये।

गिनती के लिए अंगुलियों की पोर अथवा माला का उपयोग कर सकते हैं। चित्त की अन्तर्मुखता के लिये यह बहुत ही शक्तिशाली अभ्यास है। रक्तचाप की शिकायत वालों के लिए बहुत ही लाभकारी है।

चक्रानुसंधान

किसी आरामदायक आसन में स्थिर बैठ जाइये। आँखें बन्द कर लीजिये। नीचे दिये क्रमानुसार एक-एक चक्र पर अपनी चेतना को सुई की नोक जैसी किसी चीज से जैसे छूते हैं उसी प्रकार मानसिक रूप से छूते जाइये।

१. मूलाधार—सबसे नीचे गुदाद्वार और शुक्र स्थान के बीच में होता है।
२. स्वाधिष्ठान—मूत्रेन्द्रिय की सीध में, जहाँ रीढ़ की हड्डी समाप्त होती है, उससे दो अंगुल नीचे।
३. मणिपुर—नाभि के पीछे, रीढ़ की हड्डी के अन्दर।
४. अनाहत—हृदय के पीछे, रीढ़ की हड्डी के अन्दर।
५. विशुद्धि—गले का पिछला हिस्सा, जहाँ रीढ़ की हड्डी गले की हड्डी से जुड़ती है।
६. आज्ञा—भ्रूमध्य के ठीक पीछे, जहाँ रीढ़ की हड्डी का अन्त होता है।
७. बिन्दु—सिर का सबसे ऊपरी भाग, जहाँ पंडित लोग शिखा रखते हैं।
८. सहस्रार—सिर का मध्य भाग।
९. चिदाकाश—बन्द आँखों से आँखों के सामने, कपाल के भीतर जो काला अंधेरा पर्दा दृष्टिगोचर होता है।
१०. भ्रूमध्य—दोनों भौहों के बीच का स्थान, जहाँ स्त्रियाँ टीका लगाती हैं।
११. नासिकाग्र—नाक का अगला हिस्सा।

नासिकाग्र पर पहुँचने के बाद फिर ऊपर से चेतना को उल्टे क्रम से घुमाते हुए प्रथम स्थान पर वापस ले आइये। फिर से पहले जैसे मूलाधार से शुरू कर नासिकाग्र तक जाइये। इसी तरह लगातार अनेकों बार कीजिये। यह चक्रानुसंधान की क्रिया है। इस अभ्यास के द्वारा आपको चक्रों के स्थान का ज्ञान होगा तथा चक्र जाग्रत होंगे।

चक्र भेदन

चक्रानुसंधान की क्रिया कर लेने के बाद चक्र भेदन की क्रिया करें। स्थिर आसन में आँखों को बन्द कर बैठ जाइये। अब मूलाधार से 'सो' की भावना



करते हुए श्वास की ध्वनि के साथ चेतना को ऊपर की ओर उठाकर चक्रों के स्थानों को भेदते हुए रीढ़ की हड्डी के मार्ग से ऊपर उठाते हुए नासिकाग्र तक लाइये। 'हं' की भावना करते हुए नासिकाग्र से वापस मूलाधार तक ले जाइये। इस अभ्यास में श्वास ऊपर से नीचे की ओर और चेतना नीचे से ऊपर की ओर चलती है। इसे ४९ राउण्ड कीजिये।



जपयोग

संस्कृत भाषा में जप का शाब्दिक अर्थ है—“भगवन्नाम की पुनरावृत्ति”। विश्व के समस्त धर्मों में भगवान के नाम की पुनरावृत्ति को दैनिक कार्य में स्थान दिया गया है। साधक को उसके उद्देश्य तक पहुँचाने के लिये ‘जप’ बहुत ही शक्तिशाली माना गया है। समस्त मानव जाति के लिए यह वरदान है जिसके द्वारा कभी न कभी मनुष्य को प्रेरणा प्राप्त होती है। इसलिए वर्तमान युग में जब मनुष्य को उचित-अनुचित का भान नहीं है, वह गलत मार्ग पर जा रहा है, ऐसे समय में सांसारिक दुःखों से उसे छुटकारा दिलाने के लिए ‘जप’ या भगवान का नाम ही शक्तिशाली एवं प्रभावशाली साधन है। इस प्रकार बन्धन से मुक्त होने के लिये जप एक सुगम विधि समझी जाती है।

योग के महान ज्ञाता ‘पतंजलि’ ने ईश्वर-समर्पण के अंतिम तत्त्व की व्याख्या करते हुए कहा है कि पवित्र शब्द ‘ॐ’ सर्वशक्तिमान ईश्वर का प्रतीक है तथा प्रकाश की खोज करने वाले साधकों को इस मंत्र का मात्र उच्चारण ही नहीं करना चाहिए वरन् उसके अर्थ पर भी ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। अतः स्पष्ट है कि जप यौगिक अभ्यास के अन्तर्गत आता है। इसलिये योग की विधियों की व्याख्या करते समय ‘जपयोग’ का भी वर्णन किया जाता है। यह भी माना गया है कि इसकी कुछ विशेष वैज्ञानिक विधि है जिसके द्वारा इस अभ्यास से निश्चित परिणाम की प्राप्ति की जा सकती है। यहाँ हम ‘जप योग’ की कुछ विशेषताओं तथा अभ्यासों का वर्णन कर रहे हैं।

मन्त्र क्या है ?

‘जप’ का अर्थ होता है किसी पवित्र ध्वनि की पुनरावृत्ति। फलतः एक निश्चित ध्वनि की आवश्यकता है, जिसे ‘मन्त्र’ कहा जा सके। व्युत्पत्ति के अनुसार ‘मन्त्र’ पुनरावृत्ति एवं मनन है, जो अभ्यासी को उसके अन्तिम उद्देश्य पर पहुँचने के योग्य बनाता है। इसलिये ‘मन्त्र’ की पुनरावृत्ति मशीन की तरह नहीं की जाती। अभ्यासी को केवल उसका अर्थ ही नहीं समझना है, बल्कि उस पर ध्यान भी करना चाहिए।

परिणामस्वरूप 'योग' में जप के अभ्यास का विशेष महत्त्व है। मन्त्र दुहराकर आध्यात्मिक सम्बन्ध स्थापित करने की एक विधि जप है। अविरल पुनरावृत्ति के द्वारा आप अपने शरीर में विशेष प्रकार की तरंगें उत्पन्न करते हैं। मन्त्र दुहराने से शारीरिक अंग शुद्ध होते हैं तथा मन आध्यात्मिक शक्ति से भर जाता है। मन्त्र व्यक्ति विशेष को मानसिक विषमता और तनाव से मुक्त करता है। महान सन्तों के मतानुसार मन्त्र ईश्वर का पूर्ण ज्ञान प्रदान करता है तथा ईश्वर से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए सर्वोत्तम माध्यम है।

पूर्व तैयारी

व्यक्ति विशेष जप के अभ्यास के लिए कैसे तैयार हो ? सर्वप्रथम आवश्यकता है कि व्यक्ति सन्तोषपूर्वक शांत स्थान पर आरामदायक स्थिति में बैठ जाए। आलस्य की भावना, अनिच्छा, मानसिक हिचक, तन्त्रा की अवस्था तथा भूख-प्यास को रोका जाय। शारीरिक हलचल नहीं हो। आँखें बन्द हों। कटिप्रदेश के नीचे का भाग स्पर्श न करें। मन्त्र जप एक योगाभ्यास की तरह माना गया है। अतः बिना आंतरिक पवित्रता के भटकरते मन से मन्त्र जप से कोई लाभ नहीं है। जप की तकनीक हमारी आंतरिक शक्ति को जाग्रत करने वाली मानी गयी है। यही कारण है कि जप को क्रियायोग के अन्तर्गत स्थान दिया गया है। कहा गया है कि विधिपूर्वक न करने पर मौखिक या मानसिक जप से फल की प्राप्ति नहीं होती। फूटे बर्तन से निकल कर बहने जाने वाले जाने जल की तरह यह जप प्रभावहीन हो जाता है। तात्पर्य यह है कि जप के लिए बैठने के पूर्व व्यक्ति को अपने में पूर्ण शुद्धता का समावेश कर लेना चाहिए। पश्चात् जप किया जाय। मन्त्र का जप न तो अति धीमी गति से किया जाय न अति तीव्र गति से। मन्द गति शरीर में आलस्य लाएगी एवं तीव्र गति से मन्त्र के गुणों का हास होगा।

जप करते समय आप यह सोचकर आगे बढ़िये कि जिस मन्त्र का उच्चारण किया जा रहा है वह बहुत ही शक्तिशाली है तथा वह शक्ति प्रदान करता है। यह साधारण अनुभव की बात है कि जप से अनेक बीमारियाँ दूर की जाती हैं। सर्प के काटे हुए व्यक्ति को मन्त्र द्वारा स्वस्थ किया जाना एक बहुत ही साधारण बात है। इसी कारण जप से अत्यधिक तनाव, रक्तचाप, हिस्टीरिया आदि रोगों का भी उपचार होता है। मन्त्र जप में दिव्य शक्ति है। विश्वास एवं इच्छाशक्ति के द्वारा उसे प्राप्त किया जा सकता है। हमारी धारणा यह है कि वास्तविक शक्ति मन्त्र में ही निहित है। कारतूस में विस्फोटक शक्ति छिपी रहती है। उस पर चोट लगने पर ही वह शक्ति बाहर प्रकट होती है। ठीक उसी प्रकार मन्त्र की शक्ति

भी मन्त्र में अप्रत्यक्ष रूप से तब तक छिपी रहती है जब तक पूर्ण श्रद्धा एवं इच्छाशक्ति के साथ जप न किया जाय। यह भी आवश्यक ही है कि किसी एक उद्देश्य के लिए मन्त्र जप किया जाय। जब मन्त्र की जागृति हो जाती है तब उसकी गुप्त शक्तियाँ सामने आती हैं।

गुप्त विज्ञान के अनुसार प्रत्येक मन्त्र में अदृश्य एवं दैवी शक्तियाँ छिपी हैं, जो हमारी साधारण ग्रहण शक्ति से परे है। यदि कोई तर्क करे कि मन्त्र शब्दों का साधारण संग्रह है तो कोई इस बात पर विश्वास नहीं करेगा, क्योंकि ये विचार अवैज्ञानिक हैं। सेडशीटर, एनी बेसेन्ट और मैडम ब्लवाट्स्की आदि तत्त्वज्ञानियों ने अपनी रचनाओं में स्पष्ट लिखा है कि 'मन्त्र' वर्णों के साधारण संग्रह से पूर्णतः भिन्न है। यदि आप सर जॉन वुडराफ द्वारा लिखित 'गारलैंड ऑफ लेटर्स' नामक पुस्तक पढ़ेंगे तो आपको समझ में आएगा कि मन्त्र या शब्दों की विशेष रचना में गुप्त अर्थ एवं शक्ति होती है। सभी मन्त्र, चाहे वे स्पष्ट हों या न हों, ऋषियों के द्वारा पूर्ण अनुभूति के पश्चात् प्रकट किये गये थे। इस प्रकार उच्चतर मानसिक अनुभवों को मन्त्र कहा गया है। वैयाकरणों द्वारा रचित शब्द मन्त्र नहीं है वरन् वे वर्णों का समूह हैं। जब तक ज्ञान में मन्त्र प्रकट नहीं होते तब तक उस सूत्र को तैयार नहीं किया जा सकता। इसलिए मन्त्र की उत्पत्ति आत्म-साक्षात्कार से हुई है, वह वर्णों की साधारण शक्ति से परे है।

आपने बाइबिल में अवश्य ही 'ईश्वर' शब्द के बारे में पढ़ा होगा। प्रत्येक व्यक्ति जो चेतना की उच्चतम स्थिति पर पहुँचा है उसने एक 'शब्द' दिया है। यही शब्द मन्त्र है। सिद्धि की अवस्था में जिस दिव्य शब्द की प्राप्ति उन्हें हुई, उसे उन्होंने अपने शिष्यों को दिया। यदि आप इसका लिखित प्रमाण चाहते हैं तो यह आपको सभी शास्त्रों में लिखा मिलेगा कि मन्त्र सदा साक्षात्कार शब्द थे।

मन्त्र दो वर्णों के अन्तर्गत आते हैं, साधारणतः ये 'सकाम' एवं 'निष्काम' संज्ञा से जाने जाते हैं। यदि निःस्वार्थ भावना से जप किया जाए तो वह निष्काम कहलाता है। यह शुद्ध समर्पण का भाव है। सकाम जप विशेष उद्देश्य से किया जाता है, जैसे—स्वयं को असाध्य रोग से मुक्त करने के लिए।

जो व्यक्ति बीमार व्यक्ति के उपचार के लिए सकाम मन्त्र जपते हैं, उन्हें शास्त्र में बताए नियमानुसार करना चाहिए। माला के प्रकार, जप की विधि, शुद्धिकरण आदि के लिए अनेक नियम हैं।

यदि आप एकमात्र आध्यात्मिक उन्नति के लिए 'निष्काम जप' करना चाहते हैं तो उसके लिए इस प्रकार के नियम नहीं हैं। किसी भी स्थान पर या समय स्नान के पूर्व या पश्चात् जप कर सकते हैं। प्रक्रिया में दिशा, समय, स्थान सम्बन्धी कोई बन्धन नहीं हैं।

प्रत्येक मन्त्र की द्वि-पक्षीय उपयोगिता है। यदि इष्ट मन्त्र है तो प्रतिदिन निश्चित संख्या में करना पड़ता है। जब हम प्रतिदिन या विशेष अवसर पर इष्ट मन्त्र का जप करते हैं तो वह हमारी प्रार्थना का एक अंग बन जाता है।

जप की विधियाँ

जप का अभ्यास पद्मासन, सिद्धासन या सुखासन में करना चाहिए। आसन में जप के लिए आरामपूर्वक कम से कम एक घंटा बैठने की योग्यता होनी चाहिए।

जप के लिए बैठने के पूर्व कुछ प्रार्थना करनी आवश्यक है। यदि आप अन्तर्मुख होकर ऐसा नहीं करेंगे तो शारीरिक या मानसिक तनाव के कारण जप के समय अनेक दृश्य सामने आएँगे। निद्रित अवस्था एवं स्वप्नावस्था को दूर करने के लिए आपको प्रार्थनाएँ करनी होंगी।

मनकों को घुमाते समय आपको मानसिक रूप से सतर्क रहना चाहिए। एकाग्रता का अर्थ मानसिक उत्सुकता, एक-चित्तता या पूर्ण सावधानी है। इसका अर्थ है जागरूकता। जप के समय नजरबन्द की सी चेतनता या मशीन की तरह पुनरावृत्ति को रोकना चाहिए। मन बड़ा धूर्त है, उसे कई तरीके ज्ञात है। यदि आप व्याख्या के लिए किसी विशेषज्ञ के पास जाएँगे तो आप चेतना को नरक के बारे में विचार करते पायेंगे जब कि अवचेतन मन स्वर्ग के विषय में सोचता रहेगा। जिस समय चेतन मन शुद्धता पर विचार करता रहेगा उस समय अवचेतन मन अशुद्धता पर सोच रहा होगा। चेतन मन की इन विभिन्न दशाओं पर आप नियंत्रण प्राप्त कर सकेंगे यदि आप मन्त्रोच्चारण में बताई गई विधियों की अवहेलना नहीं करेंगे।

१. बैखरी जप—

बैखरी जप में मन्त्र को स्पष्टतापूर्वक अपनी स्वाभाविक आवाज में जोर से बोलकर जपा जाता है। बैखरी जप के द्वारा कुछ समय के बाद मन एकदम शांत हो जाता है तथा दिव्य भाव मन में लहराने लगते हैं।

२. उपांशु जप—

उपांशु जप में, मन्त्र को बिना जोर से बोले फुसफुसाहट की आवाज में इस प्रकार किया जाता है कि उसे अपने सिवाय और कोई दूसरा व्यक्ति नहीं सुन सके। इसमें ओठ भर हिलते हैं परन्तु कोई आवाज नहीं निकलती। इसमें बैखरी जप से अधिक ध्यान लगाने की जरूरत पड़ती है।

३. मानसिक जप—

वैखरी तथा उपांशु जप द्वारा मन की स्थिरता प्राप्त कर लेने के बाद ही मानसिक जप का अभ्यास करना चाहिए। इस जप में शरीर के किसी भी अंग में कोई गति नहीं होती, केवल मन में मन्त्र का मानसिक स्पन्दन होता रहता है।

४. लिखित जप—

लिखित जप किसी नोट-बुक या कापी में करना चाहिए। हरी, नीली या लाल स्याही का प्रयोग कर सकते हैं। कापी में साफ-साफ सुन्दर अक्षरों से पूरे ध्यान तथा एकाग्रतापूर्वक अपने मन्त्र को लिखते जाना चाहिए। अक्षर जितने ही छोटे होंगे उतनी एकाग्रता बढ़ेगी। अनेक प्रकार के कलात्मक चित्रों का डिजाईन करके भी लिखित जप का अभ्यास किया जाता है।

५. अजपा जप—

अजपाजप अपने आप में एक पूर्ण साधना है। इसके द्वारा साधक 'समाधि' का अनुभव कर सकता है। मानव चेतना को विकास की उच्चतम स्थिति में पहुँचाने वाली इस क्रिया की पूर्ण विधियाँ आगे विस्तारपूर्वक समझाई गयी हैं।

जप योग में माला की उपयोगिता

जप के अभ्यास में माला का विशेष महत्त्व है। एक मुख्य मनके के अतिरिक्त १०८ मनकों वाली माला जप के लिए प्रयोग में लायी जाती है। इस यौगिक अभ्यास के लिए वास्तविक रूप में माला एक साधन है। साधारणतः साधक अपने पास माला रखते हैं, परन्तु माला न रहने पर अंगुलियों पर गिनना विहित किया गया है, क्योंकि जप की गिनती को महत्त्व दिया गया है। तुलसी, रुद्राक्ष या स्फटिक पत्थर की माला ले सकते हैं।

जप के लिए माला आवश्यक है। सभी बड़े सन्तों ने जप के लिए माला निर्धारित की है। क्रिश्चियन लोगों के पास भी जप माला होती है। माला रखना अच्छा होता है।

जप करते समय माला पकड़ने की विशेष विधि है। हम केवल तीन अंगुलियों का प्रयोग करते हैं—अँगूठा, तृतीय एवं चतुर्थ अँगुली है। द्वितीय एवं पंचम अँगुली का प्रयोग करने से बचना चाहिए। यह प्रथम नियम है। द्वितीय नियम यह है कि माला पीछे की ओर न घुमायी जाय, वरन् आगे की ओर ही बढ़ते जाय। तृतीय नियम के अनुसार हमें 'सुमेरु' (प्रमुख मनके) को पार नहीं करना चाहिए।

ये महत्त्वपूर्ण नियम है, जिससे चित्त का भटकना और केवल मशीन की तरह माला फेरना आदि बातें रोकी जाती हैं।

आप मन्त्र की रचना पर ध्यान कर सकते हैं, उसकी ध्वनि, तरंग, उसके दिव्यता पर ध्यान केन्द्रित कर सकते हैं या आप इस बात पर जागरूक रहिए कि आप ध्यान कर रहे हैं। मन्त्र या जप की विधि पर ही जागरूक नहीं रहना चाहिए वरन् इष्ट देवता के रूप का भी ध्यान रखना चाहिए। रूप पर ध्यान खुली या बन्द आँखों से रख सकते हैं।

सारांश

जप का अर्थ माला सहित मन्त्रों को दुहराना है। मुख्य मनके को सुमेरु कहते हैं। मनोवैज्ञानिक शब्द में उसे पुनर्जीवन बिन्दु कह सकते हैं। माला हृदय के समीप रखिए। एक माला पूर्ण होने पर मुख्य मनके पर पहुँचकर सावधानी रखिए कि उसे को पार न करें।

इस प्रकार जप में तीन बातों को याद रखिये:-

१. प्रत्येक मन्त्र का एक देवता होता है। इसमें न शंका कीजिए और न तर्क कीजिए। जब तक आप इसे गलत साबित न कर दें तब तक इसे आप अस्वीकृति नहीं कर सकते।

२. मन्त्र सिद्ध किया जा सकता है।

३. मन्त्र द्वारा हम अपनी आध्यात्मिक अभिलाषाओं की पूर्ति कर सकते हैं।

मन्त्र के द्वारा उन्नति एवं शांति प्राप्ति के बाद आप ईश्वर को नहीं भूल सकते हैं। धीरे-धीरे समर्पण का भाव बढ़ता है। अतः हमें जप का कुछ न कुछ अभ्यास करना चाहिए।

अजपाजप

जप का अभ्यास उतना ही प्राचीन है जितना भारतीय शास्त्र है। कुछ प्राचीन योग शास्त्रों में ऐसे पद्यांश मिलते हैं जिनसे यह स्पष्ट होता है कि श्वास 'सो' ध्वनि करती हुई भीतर जाती है और जब श्वास बाहर आती है तब 'हं' शब्द सुनाई देता है। यह अजपा-गायत्री है जिसे जीव निरन्तर दुहराता है। ऋषि वाल्मीकि को नारद मुनि द्वारा जिस जप की प्राक्रिया का निर्देश दिया गया था वह यही अजपा है। वर्तमान में भी भारत में अनेक आध्यात्मिक सम्प्रदाय इसका अभ्यास करते हैं। प्राचीन ऋषियों ने भी इसका अभ्यास किया। महात्मा गाँधी ने लिखा है—'नाम'सिर्फ मुँह से ही न लिया जाय, वरन् उसे हृदय के अन्तर्तम से निकलना चाहिए। जब नाम हृदय से उच्चारित होता तब 'अजपा' कहलाता है।

अजपा एक महत्त्वपूर्ण साधना है तथा इसके अभ्यास व्यक्ति सीधे ही समाधि की अवस्था प्राप्त कर सकता है। अन्य सभी यौगिक अभ्यासों में समाधि प्राप्त हेतु श्वास को स्थगित एवं नियंत्रित कर नाप पड़ता है। अजपा के नियमित अभ्यास में श्वास क्रिया सामान्य रहती है और समाधि तक कोई परिवर्तन नहीं आता।

कबीरदास ने भी अपने एक दोहे में अजपा जप के विषय में कहा है—

ऐसा जाप जपो मन लाई, सोऽहं सोऽहं सुरता गाई।

छै सौ सहस इकिसौ जाप, अनहद उपजै आपै आप।

'अजपा' क्रियायोग का एक अंग है। एक मुसलमान सन्त ने अजपा के सन्दर्भ में कहा है—'मैं चेतना के चतुर्थ आयाम का अनुभव कर रहा हूँ। पुनः उसने कहा है—'यह 'हं' की चेतना नाभि केन्द्र से प्रारम्भ होती है। जब बाहर आती है तो विपरीत होती है।' अतः आप नाभि केन्द्र से उत्पन्न करते हैं और जब उसकी उत्पत्ति पूर्णरूपेण हो जाती है तब आप इसके विपरीत 'सो' उच्चारण करते हैं। अब वह हंसो बन जाता है।

योग में कुछ विशेष अभ्यास है जिसमें व्यक्ति अन्तर्मुखी बन जाता है। श्वास का सहज स्थगन हो जाता है। कठिनाई यह है कि कुछ समय के ध्यान के बाद साधक बहिर्मुखी हो जाता है। फेफड़ों का अनुरूप समर्थन न होने के कारण ऐसा होता है। हममें से अधिकांश के साथ ऐसा होता है।

अजपा में इस कठिनाई का हल हो जाता है। अजपा स्वयं एक पूर्ण साधना है।

पंतजलि के 'योगसूत्र' का पठन करने वाले जानते हैं कि सर्वप्रथम एक निश्चित वस्तु पर ध्यान करना पड़ता है। जब खुली आँखों से वस्तु विशेष पर ध्यान की क्रिया पूर्ण हो जाती है तब बन्द आँखों से उस पर ध्यान करना चाहिए। यह सूक्ष्म रूप का ध्यान है। सूक्ष्म वस्तु के ध्यान की सिद्धि के पश्चात् साधारण जागरूकता के साथ उसकी उपस्थिति पर ध्यान करना चाहिए। जब बालक प्राथमिक कक्षा पास कर उच्च कक्षा में आ जाता है तो वह निम्न कक्षाओं की पुस्तकों को अनावश्यक समझता है। इसी प्रकार योग में भी व्यक्ति को विशेष अभ्यास करना पड़ता है। 'भगवत् गीता' में भी अजपा का स्पष्ट सन्दर्भ है—

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।

प्राणापानगती रूद्ध्वा प्राणायामपरायणाः॥

अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति।

सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः॥ (गीता ४-२९-३०)

उसके अनुसार कुछ प्राण को 'अपान' में हवन करते हैं और अन्य 'अपान' को प्राण में। दूसरे 'प्राण' को 'प्राण' से ही मेल करते हैं। अन्दर जाने वाली श्वास 'प्राण' है तथा बाहर आने वाली 'अपान'। 'सो' प्राण का प्रति-निधित्व करता है और 'हं' आपान का। इसलिए कुछ साधक प्राण को अपान से मिलाते हैं। वे 'सो' को 'हं' से जोड़ते हैं जिससे सोहं बनता है। अन्य साधक अपान को प्राण से जोड़ते हैं, अर्थात् वे हं का योग सो से करते हैं जिससे 'हंसो' का निर्माण होता है। कुछ ऐसे साधक भी हैं जो प्राण का मिलन प्राण से करते हैं। इस अभ्यास का वर्णन बाद में किया जाएगा।

गीता में अजपा के विषय में एक बात और कही गई है। कहा गया है—'नासिका में जाने वाली प्राण और अपान वायु को बराबर बनाये रखिए। भीतर जाने वाली और बाहर आने वाली श्वास की लम्बाई और अवधि समान रहे।'।

इस प्रकार अजपा के अभ्यास का बहुत महत्त्व है। इसका प्रसंग शास्त्रों में भी मिलता है। वह स्वयं में पूर्ण है। इसके द्वारा व्यक्ति बिना आध्यात्मिक शिक्षक की सहायता के भी आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रवेश कर सकता है। यदि आप अजपा के लिए 'सोहं' ही लेंगे तो इसी में आप छह चरणों को पूर्ण कर सकते हैं।

त्राटक के सफल अभ्यास के बाद व्यक्ति को उस ध्यान की वस्तु की अन्तर्दृष्टि प्राप्त होती है, परन्तु बाद में मार्ग बन्द हो जाता है। इस तरह अन्य यौगिक अभ्यास के द्वारा आप स्वयं समाधि तक नहीं पहुँच सकते। आपको आगे निर्देशन के लिए आध्यात्मिक शिक्षक की आवश्यकता पड़ेगी। अजपा में आपको निर्देशक की जरूरत नहीं है।

कहा गया है कि व्यक्ति को ऐसा जप करना चाहिए जिसका कभी अन्त न हो। उसकी समयावधि अनन्त हो। इस प्रकार के किसी मन्त्र का ज्ञान हमको नहीं है। इसलिए मन्त्र की पुनरावृत्ति की ऐसी विधि हो ताकि मन्त्र की समाप्ति न हो। अजपा जप के द्वारा इसकी प्राप्ति की जा सकती है। श्वास के साथ मन्त्र जोड़ा जाता है तो उसके प्रति पूरे समय जागरूकता बनी रहती है।

अजपा जप के वास्तविक अभ्यास का वर्णन करने के पूर्व हमें एक बात और समझ लेनी चाहिए। यदि आपके हाथ में चोट लगे और हम पूछें कि क्या आपको दर्द है तो आपका उत्तर 'हाँ' रहेगा। परन्तु दर्द है कहाँ ? आप कहेंगे वह आपके मस्तिष्क में है। यहाँ दर्द का स्थान है। योग में भी चेतना के विशिष्ट स्थान के खोज की अलग-अलग प्रक्रियाएँ हैं।

आपकी चेतना कहाँ है ? आप स्वयं क्षण भर के लिए सोचिए कि आप कहाँ हैं ? आप नहीं जानते कि आप कहाँ हैं ? आपकी जागरूकता या चेतना अब बहिर्मुखी या अनावृत्त है परन्तु शरीर के किसी विशेष केन्द्र पर उसकी स्थिति नहीं है।

मान लीजिए ध्यान करते समय अचानक आप अपने मानस पटल पर प्रकाश देखते हैं। आप उसे एक सेकेण्ड के लिए देखते हैं। यौगिक भाषा में यह 'चेतना की खोज' कहलता है। आध्यात्मिक मार्ग में यह एक महत्त्वपूर्ण सत्य है। इसी विधि के द्वारा योगी चेतना को सम्प्रेषित हैं।

साधारणतः हमें इस बात का ज्ञान नहीं रहता कि हमारा सूक्ष्म शरीर कहाँ है। अजपा के अभ्यास से हममें यह जानने की योग्यता आती है कि हमारी चेतना कहाँ है।

सफेद और काले रंग के दो पक्षी दो रस्सियों द्वारा एक खूंटی से बँधे हैं। जब तक वे बँधे रहेंगे तब तक उन्हें उड़कर पुनः वापस आना पड़ेगा। अनेकों बार वे उड़ते हैं। अन्त में वे थककर शांतिपूर्वक खूंटे के पास सो जाते हैं। यह उदाहरण 'इड़ा और पिंगला' का सन्दर्भ देता है। मानों उन्हीं की तरह से दो पक्षी हैं। दाहिनी नासिका से होकर जाने वाली 'पिंगला' (सूर्य नाड़ी) है और बायीं नासिका से होकर जाने वाली इड़ा (चन्द्रनाड़ी) है। एकान्तर रूप से कार्य करने वाली इड़ा पिंगला व्यक्ति को अन्तश्चेतना से दूर रखती है। जब तक वे एकान्तर से कार्य करती हैं तब तक समाधि की प्राप्ति नहीं होती। यह तभी होता है जब दोनों पक्षी इड़ा और पिंगला थक कर केन्द्र पर आराम करते हैं और तब 'सुषुम्ना' के जाग्रत होने पर ध्यान की क्रिया अपने आप प्रारम्भ हो जाती है। 'स्वरयोग' के अनुसार जब दोनों नासिका छिद्रों से समानरूपेण प्रवाह होता है तो यह प्रदर्शित होता है कि सुषुम्ना का प्रवाह हो रहा है। ऐसी स्थिति में सब सांसारिक कार्यों को त्यागकर व्यक्ति को ध्यानस्थ हो जाना चाहिए। यह सामान्य अनुभव की बात है कि ध्यान कभी-कभी सरलतापूर्वक होता है। कारण यह है कि उस समय सम्पूर्ण

संस्थान में समस्वरता होती है। जब सुषुम्ना कार्य नहीं करती तब प्रयत्न के बाद भी एकाग्रता नहीं आती। अतः यह महत्त्व की बात है कि इड़ा और पिंगला के कार्य में एकाग्रता लायी जाए। इस प्रकार सुषुम्ना का क्रियाशील होना सम्भव हो जाएगा।

विचारधाराओं को रोकने के लिए व्यक्ति को उसे देखना पड़ता है, उसका निरीक्षण करना पड़ता है। अजपा के समय इसकी पूर्व सजगता रखनी है कि आप क्या कर रहे हैं। अविरल तेल धारा की तरह अपनी चेतना को निरन्तर बनाए रखें। आप क्या कर रहे हैं—इसके प्रति आप निरन्तर जागरूक रहिए।

अजपा में द्वितीय महत्त्वपूर्ण बात यह है कि व्यक्ति को ध्यान के केन्द्र पर मस्तिष्क को एकाग्र करना चाहिए। यह केन्द्र 'आज्ञाचक्र' (तृतीय नेत्र या भूमध्य), अनाहतचक्र (हृदय) या शरीर का कोई अन्य केन्द्र हो सकता है। यह क्रिया 'ईश्वर प्रणिधान' कहलता है। अजपामें तीन बातें महत्त्वपूर्ण हैं 'तपस्या', स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान। इसके अतिरिक्त अजपा के लिए तीन और प्रमुख बातें हैं—१. गहरी श्वास की क्रिया २. विश्रान्ति ३. पूर्ण सजगता। कोई भी श्वास बिना देखे नहीं जानी चाहिए। स्वतः श्वास क्रिया न हो। आने-जाने वाली श्वास क्रिया पर आपकी सजगता बनी रहे।

इस प्रकार श्वास क्रिया में मन्त्र जोड़ना ही अजपा है। इसका अभ्यास कुर्सी पर, जमीन पर या किसी आसन अर्थात् पद्मासन, सिद्धासन या सुखासन में किया जा सकता है।

अजपा में महत्त्व की बात यह है कि सर्वप्रथम आपको आने-जाने वाली श्वास के प्रति चैतन्य रहना होगा, श्वास स्वतःस्फूर्त नहीं रहेगी। स्वाभाविक श्वास रात को भी रहती है, यह अजपा नहीं है। सचेतन रूप से आने-जाने वाली श्वास को देखना होगा। चौकीदार की तरह दोनों श्वासों के प्रति निरन्तर सतर्क रहना पड़ेगा।

आपको यह भी देखना चाहिए कि श्वास कहाँ तक जा रही है। जब आप श्वास लेते हैं तो वायु नाभि तक जाती है। श्वास छोड़ते समय वह नाभि से आती है। छेड़कर ऐसा अनुभव कीजिये कि आप सो रहे हैं। गहरी नींद में व्यक्ति जैसी गहरी श्वास लेता है वैसी ही लीजिए। कुछ दिनों के पश्चात् आपकी श्वास विधिवत् तथा अनुपातिक बन जाएगी। श्वास-प्रश्वास की साधारण गति १ मिनट में १५ बार रहती है। एक घंटे में ९०० श्वास तथा २४ घंटे में कुल २१,६०० श्वास ली जाती हैं।

जैसे ही एकाग्रता गहरी होती है, श्वसन धीमा पड़ जाता है। १५ के स्थान पर प्रति मिनट १० श्वास ली जाएँगी। सोते हुए की स्थिति में आप जितनी लम्बी और गहरी श्वास लेते हैं वैसी ही अजपा में लेंगे।

हम अब अजपा के विशेष कला-पक्ष पर आते हैं। अजपा की व्यावहारिकता में केवल एक ही कठिनाई है तप। इसका अर्थ है कठिन परिस्थिति में अपने संकल्प को बनाए रखना। आपको एक आसन में बैठे रहना चाहिए। न शरीर हिले और न मन इधर-उधर भटके। यह शारीरिक चैतन्यता नहीं बल्कि एक ही स्थिति में अपने को बनाये रखने की क्षमता है। आप निश्चय कीजिये कि आप प्रतिदिन ४५ मिनट अजपा का अभ्यास करेंगे। एक दिन आप ऐसा कर सकेंगे। दूसरे दिन आप धैर्य खो देंगे। तीसरे दिन आपकी रुचि कम हो जाएगी। चौथे दिन आप सब कुछ खो देंगे। अपने निश्चय को बनाये रखिए और एक माह या अधिक समय तक निरंतर अभ्यास कीजिए।

आरामदायक आसन में बैठिए। अंगों को ढीला छोड़िये। गहरी श्वास लीजिये। पश्चात् भीतर जाने वाली श्वास के साथ 'सो' और बाहर आने वाली श्वास में 'हं' जोड़ें। अनुभव कीजिये कि आप 'सोहं' को देख रहे हैं। 'सो' और 'हं' के बीच मानसिक रूप से अन्तराल न आए। 'हं' के बाद कुछ रुकिये। 'सो' के साथ श्वास लें। 'हं' के साथ छोड़िये। यह 'सोहं' की एक आवृत्ति है। श्वास के आने-जाने और सोहं पर चेतना बनी रहे।

कुछ समय पश्चात् अजपा बन्द कीजिये और अंधकार या शून्य में जाइए। मन को भृकुटी पर ले जाइए और आज्ञा चक्र पर ध्यान कीजिये। यदि आप चाहें तो हृदय चक्र पर भी ध्यान कर सकते हैं। कुछ सोचिये नहीं, निर्विकार बनिये। जो भी विचार आएँ उन्हें दूर हटाइये। केवल शून्यता का ध्यान कीजिये। कुछ देर ऐसा कीजिये तत्पश्चात् पुनः अजपा प्रारंभ कीजिये।

'सोहं' मंत्र के प्रति कुछ गलत धारणा है। 'सोहं' का अर्थ 'मैं वही हूँ—' नहीं होता। भीतर जाने वाली श्वास 'सो' शब्द उत्पन्न करती है तथा बाहर आने वाली श्वास से 'हं' शब्द की तरंग उत्पन्न होती है। आप 'सोहं' के शाब्दिक अर्थ पर विचार न करें। आगे दी गई विधि के अनुसार आपको अर्थ एवं प्रभाव का ज्ञान हो जाएगा।

प्रथम चरण

किसी आसन में स्थिर बैठ जाइये। आँखें बन्द कर लीजिये।

शारीरिक एवं मानसिक रूप से अपने को शांत कीजिये।

अपने को जितना अधिक आराम की स्थिति में ला सकें लाइये। अपनी चिंताओं एवं परेशानियों को कुछ देर के लिये दूर रखिये। शांति, सुख, आराम का अनुभव कीजिये।

अजपा का अभ्यास प्रारम्भ करने के पूर्व मन को पूर्णतः शान्त कीजिये।

अनुभव कीजिये कि आप सुख पूर्वक बैठे हैं। पहले बताये अनुसार श्वास लीजिये। प्रत्येक आने-जाने वाली श्वास के प्राति सजग रहिये। अनुभव कीजिये

कि आने वाली श्वास नाभि तक जाती है और बाहर जाने वाली श्वास नाभि प्रदेश से आती है। श्वास गहरी एवं सहज हो। प्रत्येक श्वास का ख्याल कीजिये। श्वास लेते समय कोई आवाज न हो। श्वास की दोनों धाराओं का अनुभव कीजिये। प्राण की चेतना बढ़ाइये।

श्वास के साथ 'सोहं' जोड़िये। अन्दर जाने वाली में 'सो' और बाहर जाने वाली श्वास में 'हं' का अभ्यास करें। प्राण एवं मन्त्र के प्रति अविरल सजगता रखिये।

अपनी चेतना को आज्ञा चक्र या अनाहत चक्र पर एकाग्र कीजिये।

विचार करना बन्द कर दीजिये तथा मानसिक शून्यता उत्पन्न कीजिये।

चेतना को संकेन्द्रित कीजिये। विशेष केन्द्र पर साधारण चेतना बनी रहे।

पुनः श्वास के आने-जाने की चेतना बनाए रखिए।

पहले की तरह आने-जाने वाली श्वास के साथ 'सोहं' प्रारम्भ कीजिये।

कुछ समय तक यह अभ्यास चालू रखिये। यह अभ्यास एक माह तक करें।

इसमें पूर्णता प्राप्त करने के बाद द्वितीय चरण पर जाइये।

द्वितीय चरण

अजपा के प्रथम अभ्यास के समय आपने भीतर जाने वाली श्वास में 'सो' जोड़ा था और बाहर आने वाली में 'हं'। अब इस द्वितीय चरण में पूर्ण क्रिया को विपरीत कर दीजिये। बाहर आने वाली श्वास के साथ 'सो' का प्रयोग कीजिये और श्वास लेते समय 'हं' जोड़िये। 'सोहं' के बीच कोई अवकाश न हो लेकिन हंसों के बाद थोड़ा सा अवकाश होना चाहिए।

बाहर आने वाले 'सो' और भीतर जाने वाला 'हं' शब्द 'प्राण' की तरंगें हैं।

'हंसों' के अभ्यास के पश्चात् शून्य बन जाइए। कुछ भी विचार न कीजिये। चेतना को आज्ञा या अनाहत चक्र पर ले जाइये। ध्यान के केन्द्र की पूर्ण चेतना रहे। केन्द्र पर कोई दबाव न डालिये। केवल मन को वहाँ केन्द्रित कीजिए।

सजगता, श्वास, शिथिलीकरण आदि की क्रियाएँ 'हंसों' के इस अभ्यास में वही रहें जो 'सोहं' के अभ्यास में थीं।

'हंसों' का अभ्यास एक माह तक किया जा सकता है। इसमें सफलता के पश्चात् अजपा के तृतीय चरण पर जाइए।

तृतीय चरण

विपरीत 'हंसों' पर आपकी चेतना थी। अब हम तृतीय चरण पर आते हैं।

'मैं' का ध्यान रखकर मानसिक रूप से अपने को शान्त करें।

यदि किसी व्यक्ति के मन में तनाव है तो गिनती द्वारा शिथिलीकरण की विधि है—बाहर आने वाली श्वास के साथ १ गिनिये और भीतर जाने वाली श्वास को २ गिनिये। इस तरह ४ तक गिनिये। ५वीं गिनती में सतर्क रहिये।

लगातार सजगता बनी रहे। अनुभव कीजिये कि आप निश्चित रूप से ५ गिन रहे हैं।

मानसिक रूप से कहिये; “मैं भीतर जाने वाली श्वास के ५ के प्रति चैतन्य हूँ और बाहर आने वाली श्वास के ५ के प्रति भी सजग हूँ।” अब ६ से ९ संख्या तक पूर्ववत् गिनिये। पुनः १० पर आकर सचेत हो जाइये। पूरी तरह यह ध्यान रखिये कि आप १० गिन रहे हैं। इस क्रिया को अनेकों बार दुहराइये। अब लययुक्त श्वास प्रारम्भ कीजिये। श्वास पूर्णतः शान्त और दीर्घ हो। समस्त श्वसन क्रिया में मन की एकाग्रता को बनाये रखिये।

‘सोहं’ या ‘हंसो’ पर ध्यान न कीजिये वरन् भीतर जाने वाली श्वास में विशेष रूप से ‘सो’ और बाहर आने वाली श्वास में ‘हं’ का ध्यान कीजिये।

केवल भीतर की श्वास में ‘सो’ तथा बाहर आने वाली श्वास में ‘हं’ का अनुभव कीजिये। इस अभ्यास के पूर्ण होने पर मानसिक शून्यता का निर्माण कीजिये। ध्यान के किसी भी केन्द्र पर अपनी चेतना को केन्द्रित कीजिये। पुनः सचेत होकर श्वसन प्रारम्भ कीजिये। स्वतन्त्र रूप से ‘सो’ और स्वतन्त्र रूपसे ‘हं’ का अभ्यास कीजिये।

इसका अभ्यास एक माह या इससे अधिक समय तक पूर्ण सतर्कता के साथ नियमित रूप से कीजिये।

चतुर्थ चरण

औंखें बन्द कर एक स्थिर आसन में बैठ जाइये।

‘मैं’ की चेतना के साथ अपने को विश्रान्त कीजिये। सुख-शान्ति का अनुभव कीजिये।

लययुक्त श्वसन प्रारम्भ कीजिये। नाभि से श्वास लीजिये और छोड़िये।

उन विभिन्न केन्द्रों के प्रति अपनी चेतना बनाये रखिये जहाँ-जहाँ से होकर श्वास नाभि से नासिका तक आती है और नासिका से नाभि तक जाती है। लययुक्त, शब्दरहित, शांतिपूर्ण और तनावरहित श्वास की क्रिया हो।

पूर्ण चेतना बनाये रखिये।

अब भीतर जाने वाली श्वास के साथ ‘सो’ और बाहर आने वाली श्वास के साथ ‘हं’ का योग रहेगा, परन्तु आपकी चेतना का रूप प्रारम्भ से लगातार ‘सोहं’ ‘हंसो’ रहेगा।

‘सो’ की लहर बनाए रखिये और उन्हें ‘हं’ की तरंगों में जोड़िये। इस प्रकार

क्रमशः 'सोहं-हंसो' का निर्माण होता है। अब अभ्यास रोकिये और मन को खाली कर दीजिए। शून्यता का निर्माण कीजिये। ध्यान के किसी भी केन्द्र पर एकाग्रता रखिये। सब विचारों को दूर कर दीजिए।

कुछ समय के बाद पुनः 'सोहं-सोहं' का अखंड वृत्त प्रारम्भ कीजिये।

आधे या एक घंटे के अभ्यास के बाद शांति और आराम का मानसिक रूप से अनुभव कीजिये। आनन्द और शांति की प्राप्ति होगी।

पंचम चरण

अब तक अजपा के चार चरणों का वर्णन किया गया है। अब हम पंचम चरण पर आते हैं। यह अभ्यास अपेक्षाकृत कठिन है। इसमें साधक को मात्र कल्पना करनी है। इसमें चेतना को मेरुदण्ड में घुमाना पड़ता है।

एकाग्रता और ध्यान की क्रिया के अन्तर्गत दो तत्त्व हैं, बाह्य चेतना का नाश करना तथा अपनी शान्त आत्मा का दर्शन करना।

यदि लैम्प का काँच काजल से भरा है तो उसका पूर्ण प्रकाश नहीं मिल पाता। काँच की सफाई के बाद ही लैम्प का प्रकाश पूर्णतः प्रकट होता है। इसी प्रकार प्रकाश या आत्मा की शक्ति हमारे अन्दर है, परन्तु मन की उलझनें, विचारों की विषमताएँ, मन की परेशानियों, राग, चिंता आदि के कारण दैनिक जीवन में वह प्रकट नहीं होता। ध्यान व्यक्ति की बाह्य चेतना को नाश करने में सहायक होता है तथा आत्मा को जाग्रत करता है। यह मन की अशुद्धता को दूर करता है।

ध्यान की विभिन्न विधियाँ हैं ? प्रथम ध्यान शरीर के समूह का है। द्वितीय ध्यान मानसिक समूह का है, अर्थात् कल्पनात्मक विचार करना। तृतीय ध्यान बौद्धिक समूह का है। ध्यान की चतुर्थ प्रक्रिया उच्च क्षेत्र की है। शारीरिक चेतना, मानसिक चेतना, बौद्धिक सजगता तथा व्यक्तित्व के अन्तर्निहित होने पर ही प्रकाश प्रकट होता है। जब तक आप अपने शरीर, मन तथा बुद्धि को ऊँची अवस्था में नहीं ले जाएँगे तब तक आप पूर्ण पवित्रता एवं शांति को प्राप्त नहीं करेंगे। अजपा के अभ्यास का उद्देश्य इसी अन्तिम सत्य की प्राप्ति है।

उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को प्राइमरी, मिडिल, हाई स्कूल एवं कालेज की शिक्षा क्रमशः प्राप्त करनी पड़ती है। इसी प्रकार 'ध्यान' की चार अवस्थाएँ हैं। प्रथम है शिथिलीकरण, द्वितीय है सजगता, तृतीय है एकरूपता एवं चतुर्थ है विस्मृति। अजपा की प्रारम्भिक अवस्था में इनका वर्णन किया जा चुका है।

अजपा के पाँचवें चरण की महत्त्वपूर्ण बात है—लययुक्त श्वसन क्रिया। द्वितीय महत्त्वपूर्ण बात है—सजगता। ध्यान की सम्पूर्ण प्रक्रिया में आपको अपने

प्रत्येक क्रिया-कलाप के प्रति सजग रहना चाहिए। यदि ध्यान करते समय आप यह भूल जायेंगे कि आप ध्यान कर रहे हैं तो आपको ध्यान में कभी सफलता नहीं मिलेगी।

ध्यान करते समय असजगता की अवस्था आती है जो लगभग नींद के समान ही होती है। प्रायः सभी साधकों के सामने यह कठिनाई आती है। आप लगभग १५ मिनट किसी समस्या पर लगातार विचार कीजिये। इस समय जब आप समस्या पर सोचते हैं उस समय आपकी चेतना इस बात की ओर नहीं रहती कि आप बार-बार एक ही समस्या पर विचार कर रहे हैं। सोचने की क्रिया समाप्त होने पर ही आपको ध्यान आता है कि आप अमुक समस्या पर ही विचार कर रहे थे। यह ध्यान नहीं है।

ध्यान में जो भी अभ्यास करते हैं, आप सजग रहते हैं कि आप सजग हैं। इसलिए एक बात पर हमेशा जोर डालते हैं कि आप क्या कर रहे हैं, इसके प्रति सजग रहिये। चैतन्य रहिये कि आप गिन रहे हैं। सचेत रहिये कि आप श्वास के आने-जाने को देख रहे हैं। प्रत्येक क्रिया के प्रति सजग रहिये। श्वास की प्रत्येक क्रिया के प्रति सतर्क रहिये। आपकी चैतन्यता अखंड बनी रहे।

यदि ध्यान में आप एक, दो, तीन गिनें तो एक सेकेण्ड के लिये भी आपकी चेतना इधर-उधर न भटके। चेतना भटके तो भटकने दें पर ध्यान में रखिये कि चेतना भटक रही है। यदि आप ध्यान करें तो यह बात याद रखें कि आप ध्यान केन्द्रित कर रहे हैं। मन का स्वभाव ही है भटकना और सुप्त रहना, आपको इसके लिए परेशान नहीं होना चाहिए परन्तु मन की वृत्तियों का ध्यान रखिये।

जब कभी आपका मन, आपकी चेतना और सजगता भटकती है तब आप सतर्क रहिये। कोई भी मानसिक क्रिया बिना ध्यान दिए नहीं होनी चाहिए। इसके बिना आपको ध्यान में कभी भी सफलता नहीं मिलेगी चाहे आप एक शताब्दी तक ध्यान क्यों न करें।

द्वितीय है अतीन्द्रिय पथ में लयबद्ध श्वसन एवं सजगता। तृतीय है अतीन्द्रिय पथ में “सो” और “हम्” के स्पन्दनों का परिभ्रमण।

यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जब भी आप मन को नियन्त्रित करना चाहते हैं, वह अधिक उदंडतापूर्वक भटकने लगता है, और आप नियन्त्रण में विफल हो जाते हैं। अतः अजपा-जप के चारों अभ्यासों में हमने इस बात पर जोर देने का प्रयास किया है कि मन को रूक जाने हेतु बलपूर्वक आदेश देने के स्थान पर आप उसके प्रत्येक क्रियाशीलन के प्रति सजग रहें। आपको लयबद्ध श्वसन, सजगता, आने-जाने वाली श्वास के साथ मन्त्र को जोड़ने और अन्त में मन में अस्थायी शून्यता उत्पन्न करने के अभ्यास बताये गये हैं।

अजपा के पाँचवे चरण में प्रारम्भ में आपको अपनी कल्पना का पूरा उपयोग करना है। बाद में वही वास्तविक प्रक्रिया हो जायेगी। पूर्व के अभ्यास में श्वास लेते समय नाभि से ऊपर की ओर आने और श्वास छोड़ते समय नाभि की ओर जाने को देखता था। अब आपको इस प्रक्रिया को बदल देनी है और मेरुदण्ड में अतीन्द्रिय चक्रों से होकर चेतना का परिभ्रमण करना है।

ये छः अतीन्द्रिय चक्र नीचे से प्रारम्भ कर मूलाधार चक्र, गुदा और जननेन्द्रिय के बीच पुरुषों में मूलाधार पिण्ड में और स्त्रियों में योनिग्रीवा में; स्वाधिष्ठान चक्र, मेरुदण्ड के आधार में; मणिपूर चक्र, नाभि के ठीक पीछे मेरुदण्ड में; अनाहत चक्र, मेरुदण्ड में हृदय के ठीक पीछे; विशुद्धि चक्र, मेरुदण्ड में कण्ठकूप के पीछे और आज्ञा चक्र मस्तक के मध्य में मेरुदण्ड के शीर्ष पर है। सर्वप्रथम अपने को शारीरिक और मानसिक रूप से विश्रान्त कर लीजिये और एक सुखद आसन में बैठ जाइये।

कुछ देर तक लयबद्ध श्वसन कीजिये और लगातार विचारों के प्रति सजग बने रहिए।

अब श्वास छोड़ते हुए श्वास को आज्ञा चक्र से विशुद्धि चक्र, फिर, अनाहत चक्र, फिर मणिपूर चक्र, फिर, स्वाधिष्ठान चक्र और अन्ततः मूलाधार चक्र में ले जाइये। श्वास चेतना को मेरु पथ में आज्ञा से मूलाधार तक परिभ्रमण कराइये।

अब अपनी चेतना को क्षणभर के लिए मूलाधार में स्थिर कीजिये। अधोमुखी त्रिकोण की स्थिति सुनिश्चित कीजिये जिसमें कुण्डलिनी है। कुण्डलिनी हमारे अन्दर की प्रसुप्त शक्ति है, जो मेरुदण्ड के आधार में सर्पिणी के समान कुण्डली मार कर सोई पड़ी है। त्रिभुज के अन्दर वह कुण्डलिनी एक लिंगम् के चारों ओर साढ़े तीन कुण्डली लगाये हुई है।

कुछ क्षणों के लिए कुण्डलिनी पर ध्यान कीजिये।

अब मूलाधार से प्रारम्भ कर मेरुदण्ड में छहो चक्रों से होते हुए श्वास लेते हुए ऊपर जाइये, फिर उसी प्रकार श्वास छोड़ते हुए नीचे आइये।

मेरुदण्ड में श्वास चेतना के सामान्य परिभ्रमण के पश्चात् श्वास लेने में "सो" और श्वास छोड़ने में "हम्" मन्त्रों को क्रमशः जोड़िये। चेतना का मार्ग मेरुदण्ड होगा और चेतना का केन्द्र होगा मूलाधार त्रिभुज और उसमें अवस्थित कुण्डलिनी। श्वास लेते समय "सो" का मानसिक उच्चारण कीजिये और "सो" के स्पन्द को श्वास लेते समय आज्ञा चक्र तक ले जाइये। पुनः श्वास छोड़ते समय आज्ञा से मेरुदण्ड होकर "हम्" स्पन्द के साथ मूलाधार तक नीचे उतरिये। कुछ देर के लिए श्वास चेतना को वहीं रखिये, और कुण्डलिनी पर ध्यान कीजिये।

अब पुनः "सो" स्पन्द के साथ मेरु पथ में आरोहण कीजिये। आरोहण

पथ “सो” मन्त्र के साथ मूलाधार से आज्ञा तक है और अवरोहण पथ “हम्” मन्त्र के साथ आज्ञा से मूलाधार तक है। “हम्” के साथ मेरु पथ में अवरोहण कीजिये और कुछ देर तक विश्राम कीजिये। अपने विषय में सजग होइये पर शून्यता नहीं हो।

सारांश यह कि “सो” मन्त्र के साथ मेरुपथ में आरोहण कीजिये और “हम्” मन्त्र के साथ अवरोहण कीजिये। वहाँ पर श्वास बाहर ही रोक कर कुछ क्षणों तक कुण्डलिनी को देखने का प्रयास कीजिये। तत्पश्चात् “सो” स्पन्दन के साथ मेरु पथ में आरोहण कीजिये और “हम्” मन्त्र के साथ अवरोहण कीजिये। अवरोहण के पश्चात् थोड़ा विश्राम कीजिये और सहज आत्म सजगता का अभ्यास कीजिये।

अजपा के इस पंचम चरण में “सो” और “हम्” के स्पन्दों के साथ मेरु पथ में चेतना का आरोहण और अवरोहण कराना है।

प्रथम—शिथिलीकरण की क्रिया।

द्वितीय—मेरुदण्ड में लययुक्त श्वसन एवं जागरूकता।

तृतीय—मेरुदण्ड में ‘सो’ और ‘हं’ स्पन्द को घुमाना।

चतुर्थ—मूलाधार पर श्वास रोकना। ऊपर की ओर आधार वाले त्रिभुज एवं उस में स्थित सर्पाकार शक्ति पर ध्यान करना।

निरन्तर ऊपर आने वाली चेतना के केन्द्रीकरण और नीचे जाने वाली चेतना के प्रतिजागरूक रहिये।

जब आप श्वास लेते हैं तो यह ‘नीचे उतरती हुई चेतना’ कहलाती है। मानसिक शांति की सर्वोत्तम विधि है—‘मैं’ की सजगता।

प्रारम्भ में चेतना को इधर-उधर ले जाना कुछ कठिन जान पड़ता है क्योंकि इसके लिए बहुत कल्पना की आवश्यकता पड़ती है, परन्तु कुछ अभ्यास के बाद यह सरल और स्वाभाविक बन जाता है।

यह अभ्यास अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इससे व्यक्ति को शांति मिलती है तथा पवित्रता प्राप्त होती है, अच्छे स्वप्न आते हैं और मानसिक दृष्टिकोण बदल जाता है। कहा जाता है कि जिस व्यक्ति की कुण्डलिनी जागृत होती है, उसे शांति पहले प्राप्त होती है ज्ञान बाद में। व्यक्ति को शांति एवं ज्ञान की प्राप्ति होने पर यह अभ्यास सफल माना जाता है। इसकी समाप्ति के बाद अन्तिम चरण पर जाइए।

षष्ठ चरण

प्रथम विधि—यह अभ्यास अधिक कठिन है। इसके लिए अपेक्षाकृत अधिक कल्पना, धैर्य और श्वसन क्रिया पर नियंत्रण की जरूरत है। किसी सुखद आसन में बैठिये, जिसमें मेरुदण्ड सीधा रहे।

आँखें बन्द कर लीजिये । हाथों को जाँघों पर या घुटनों पर रखिये । अपनी मानसिक परेशानी को एक ओर रखिये । 'मैं' की चेतना का अभ्यास कीजिये । आनन्द एवं शांति की कल्पना कीजिये । इस तरह अपने को पूर्णतः शिथिल कर लीजिये । अब अंगूठों से कानों को बन्द कीजिये । आँखों तथा ओठों को अंगुलियों से बन्द कीजिये । गहरी श्वास लीजिये । श्वास को भीतर लेने के बाद नासिका छिद्रों को भी बन्दकर लीजिये ।

अब अपनी चेतना को मेरुदण्ड प्रदेश में घुमाइये । 'सो' की ध्वनि के साथ मूलाधार चक्र से ऊपर की ओर आज्ञा चक्र तक जाइये ।

'हं' के साथ आज्ञा चक्र के मूलाधार चक्र तक आइये । अब श्वास छोड़िए और कुछ आराम कीजिये ।

आराम के इस क्षण में आत्म-सजगता एवं चैतन्यता बनाये रखिये ।

द्वितीय विधि—अजपा के छठवें चरण के द्वितीय स्तर में आप आँख, कान, नाक या मुँह बन्द न करें ।

केवल साधारण श्वास लेकर श्वास रोकिये ।

श्वास रोके रहने की अवस्था में अपनी चेतना को मेरु प्रदेश में मूलाधार से आज्ञा चक्र तक घुमाइये । आज्ञा चक्र पर कुछ देर रुकिये ।

अब नीचे जाइये और श्वास छोड़ दीजिये ।

आराम कीजिये और 'मैं' की चेतना का अभ्यास कीजिए ।

उपसंहार

हमने अजपा के ध्यान की छह अवस्थाओं का वर्णन किया है । श्वास पर पूर्ण एकाग्रता द्वारा चेतना को पृथक् करने की विधि का वर्णन इन अभ्यासों में किया गया है । प्रथम ध्यान की अवस्था से होकर आपको धीरे-धीरे अन्तिम तक पहुँचना है ।

इन छह अभ्यासों में से चार का अभ्यास अपनी सुविधा के अनुसार बिना किसी कठिनाई के के घर में ही कर सकते हैं । पाँचवाँ अभ्यास कुछ कठिन है, क्योंकि इसमें काफी कल्पना शक्ति की जरूरत पड़ती है । पाँचवें स्तर में सफलता प्राप्त कर लेने पर छठवाँ अभ्यास बहुत सरल हो जायेगा ।

अजपाजप की बताई गई विधि व्यावहारिक है । अतः उसके मनोवैज्ञानिक लाभ के विषय में अधिक नहीं बताया गया है । यह नहीं भूलना चाहिए कि अजपाजप से सभी मानसिक विकल्पों का स्थाई रूप से निवारण होता है । इसके औपचारिक लाभों का वर्णन करना कठिन है ।

अजपाजप के आध्यात्मिक लाभ भी हैं। इनका संकेत गुप्त और गूढ़ सूत्रों में प्राचीन शास्त्रों में मिलता है। यह गुप्त धन है जिसकी रक्षा शताब्दियों से हो रही है तथा जिसके विषय में केवल योग्य साधकों को ही गुरु परम्परा में बताया जाता है।

चिदाकाश विद्या

ध्यान की विभिन्न प्रक्रियाओं में एक शक्तिशाली प्रक्रिया चिदाकाश विद्या है। यह स्वयं के द्वारा ग्रहण की जाने वाली विधि है। चिदाकाश विद्या का सन्दर्भ हमें वेदों में मिलता है परन्तु इसकी प्राप्ति की विधि, इसे सीखने की क्रिया 'गुरु-शिष्य' परम्परा के लिये छोड़ दी गई है।

प्रथम परिचय

चिदाकाश विद्या आत्मज्ञान के लिए ध्यान की एक प्रक्रिया है। विद्या का अर्थ यहाँ ध्यान है। चिदाकाश का अर्थ सूक्ष्म है—वह है अचेतन सत्ता और आत्मा। जब आप आँखें बन्द करते हैं तो अन्दर में अनन्त अंधकार दिखाई देता है। बाइबिल में इसे 'आत्मा की अंधेरी रात' कहा गया है। यह सूक्ष्म, ग्रहणशील आत्मानुभूति और निर्जन अंधकारपूर्ण चेतना का प्रकाशहीन चिदाकाश का रूप है।

अंधकार और अज्ञान आत्मा के प्रकाश को ढँक लेते हैं। शिष्य को इस अन्धकार को पार करना है और जब तक उसे 'आंतरिक प्रकाश' के दर्शन नहीं होते, गुरु-शब्द केवल निर्देशक का कार्य करते हैं। शिष्य को स्वयं इस अन्धकार से अपने गुरु शब्दों के प्रति निष्ठा और भक्ति रखते हुए पार होना है।

जब आप बन्द नेत्रों से आरामदायक आसन में चिदाकाश विद्या के अभ्यास के लिए बैठते हैं तो आप सर्वप्रथम अंधकार में प्रवेश करते हैं। इसलिए उपनिषदों ने कहा कि जो कर्म की उपासना करते हैं वे तमस् में प्रवेश करते हैं, पर जो ध्यान की उपासना करते हैं वे भी उसी तमस् में प्रविष्ट होते हैं। पर यह तमस् सनातन नहीं है। यह समाप्त होता है।

प्रतीक की अभिव्यक्ति

यदि आप 'चिदाकाश विद्या' के अभ्यास का प्रयास करेंगे तो आपको कोहरा, धुआँ, अन्धकार, सूर्य, चन्द्र, तारा, वायु, अग्नि, चिनगारी, उड़ती चिड़िया, छोटे-छोटे कणादि अनेक वस्तुएँ क्रमशः दृष्टिगोचर होंगी। अचेतन और अर्द्धचेतन

मन की गहराई में छिपी हुई बातों के आधार पर आपको वस्तुएँ दिखाई देंगी। अतः साधारतः साधक चिदाकाश में उपर्युक्त चिह्नों को अपने परिश्रम से या निर्देशक के प्रस्ताव स्वरूप देखने में सफल होता है। जब निर्देशक द्वारा बताई बातें कार्यान्वित होती हैं तो सब वस्तुएँ कल्पनात्मक रूप से दिखाई देती हैं परन्तु गहरे ध्यान के बाद एक अवस्था ऐसी आती है जब साधक इन वस्तुओं को वस्तुतः देखता है। ये सभी प्रतीक जो मस्तिष्क के निम्न स्तर पर रहते हैं और विभिन्न विधियों से अपने को भावों के सघन रूप में प्रकट करते हैं।

पूर्ण त्याग एवं विश्वास के साथ यदि इस अभ्यास को आप करते रहेंगे तो एक दिन आप चिदाकाश को ज्योति से पूर्ण पायेंगे। वह दिन गौरव का होगा जब आप एक प्रकाशमान दीप के रूप में 'आत्मा के प्रकाश' का दर्शन करेंगे। वह अवस्था आपके लिए वरदान स्वरूप होगी। आप ऐसी शांति, शक्ति और हल्केपन का अनुभव करेंगे जो कल्पना से परे है।

चिदाकाश विद्या के अभ्यास के लिए बाह्य रूप से आपके लिए दो बातें आवश्यक हैं। निर्देशक या गुरु के प्रति पूर्ण श्रद्धा एवं समर्पण का भाव हो। यह शर्त कठिन है परन्तु अत्यन्त आवश्यक है। द्वितीय आवश्यक बात है कि ध्यान के लिये किसी एक आसन पर योग्यतापूर्ण अधिकार हो। आध्यात्मिक मूल्य के अतिरिक्त चिदाकाश विद्या के मनोवैज्ञानिक उपचार का भी महत्त्व है। यह ब्रह्मज्ञान की कुन्जी भी है। आधुनिक पाठकों के लिए इसका मनोवैज्ञानिक क्षेत्र अधिक आकर्षक, मनोरंजक तथा उत्साहवर्धक है। इसका रहस्यमय क्षेत्र उनके लिये अपेक्षाकृत कम आकर्षक एवं मनोरंजक है जो आपकी इच्छा के विरुद्ध स्वयं को अच्छा बताता है। आप जीवन में ईश्वर-दर्शन की इच्छा न रखते हों फिर भी इस विद्या का अभ्यास आप करेंगे तो कुछ ही समय के बाद आपको अच्छे परिणाम की प्राप्ति होगी। आप अमूल्य ज्ञान अर्जन करेंगे।

आप प्रश्न कर सकते हैं कि ध्यान के समय आसन-परिवर्तन से क्या होगा ? हाँ, आप आसन बदल सकते हैं। इसके लिये कोई बाध्यता नहीं है, परन्तु आसन बदलने पर आपकी भीतर गई हुई चेतना पुनः भौतिक स्तर पर आ जाएगी। अब चेतना को अन्दर करने के लिए आपको नये सिर से प्रयास करना पड़ेगा। आसन-परिवर्तन की याद दिलाता हुआ पैरों का दर्द चेतना की आंतरिक यात्रा में बाधक है। यदि आपने आसन में पूर्णता प्राप्त नहीं की है तो आप एक ही आसन में अधिक देर तक नहीं बैठ सकते। एक क्षण के लिए भी उस आसन से हटने का तात्पर्य है अभ्यास को नये सिर से प्रारम्भ करना। अतः प्रारम्भिक साधकों को चाहिए कि सर्वप्रथम आसनों में पूर्णता प्राप्त कर लें।

प्राथमिकता के आधार पर ध्यान के लिए उपर्युक्त आसनों का क्रम इस प्रकार है—१. पद्मासन २. सिद्धासन ३. स्वस्तिकासन ४. सुखासन। इनमें से आप किसी

एक आसन का चुनाव कर लीजिये। जब भी समय मिले आप इसका अभ्यास करते रहिये ताकि ध्यान के समय सम्भवतः उत्पन्न होने वाले दर्द पर आप विजय प्राप्त कर सकें। पद्मासन उत्तम है और सिद्धासन सर्वोत्तम।

आसन में पूर्णता प्राप्ति के लिए मेरुदण्ड तथा हड्डियों का लचीलापन विशेषरूप से आवश्यक है। हड्डियों, जोड़ों आदि का कड़ापन मांसपेशीय न स्वास्थ्य के लिये उचित है और न ध्यान के लिए ही अच्छा है। योगासन और प्राणायाम के नियमित अभ्यास के द्वारा यह कमजोरी दूर की जा सकती है।

साधना का समय

चिदाकाश विद्या के लिए रात्रि का समय उत्तम एवं ब्रह्ममुहूर्त सर्वोत्तम है क्योंकि इस समय मन तनावरहित एवं वातावरण शांत रहता है। पूर्ण स्नान के बाद अभ्यास किया जाए तो अधिकतम लाभ होगा।

स्नान का महत्त्व

जल से पूर्ण स्नान करना बहुत लाभदायक है। इसका मस्तिष्क पर सीधा प्रभाव पड़ता है। स्नान के बाद मन ताजगी का अनुभव करता है। अधिक समय की नींद भी स्नान के समान मन को ताजा नहीं कर सकती। नींद या भोजन भी आपको स्नायु सम्बन्धी अथवा भावनात्मक शक्ति उस परिणाम में प्रदान नहीं कर सकते हैं जितना कि स्नान कुछ क्षणों में दे देता है। स्नान से शरीर एवं मन की थकान पूर्णतः दूर हो जाती है। स्नान से जो मानसिक स्थिति प्राप्त होती है वह ध्यान के लिए हितकर है।

आध्यात्मिक प्रतीक

चिदाकाश क्या है ? इस शब्द के अर्थ का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। सफलतापूर्ण अभ्यास के पूर्व इसके लाभों से परिचित होना चाहिए। 'चिदाकाश दो शब्दों के मेल से बना है—चित्त और आकाश। चित्त का अर्थ यहाँ चेतना या सजगता से है। आकाश का है—स्थान। हमारी चेतना का विस्तार प्रदेश कालातीत है। वह हमारी व्यक्तिगत ज्ञान-शक्ति का एक अंश है। बहुत अधिक मात्रा में चिदाकाश आंतरिक व्योम को प्रदर्शित करता है, चेतना को दर्शाता है, अनन्त आकाश में विचरण करता है अर्थात् वह चेतना है जो पूर्णतः ग्रहणशील है।

पश्चिमी देशों के मनोवैज्ञानिकों ने मानव मस्तिष्क को टटोलने का प्रयास किया है। तीन स्तरों की खोज उन्होंने की है—चेतन, अवचेतन तथा अचेतन। भारतीय दार्शनिकों ने स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर की चर्चा की है, जहाँ चेतना का निवास है। साथ ही जाग्रतावस्था, स्वप्नावस्था और निद्रावस्था का

भी वर्णन किया है। वे चतुर्थ अवस्था को सर्वोत्तम कहते हैं। यह स्थूल वर्गीकरण है। प्राचीन सन्तों ने अनुभव के द्वारा यह ज्ञान प्राप्त किया है कि चेतना या चित्त के कार्य स्तर चौदह हैं। आपकी चेतना इन्द्रिय स्तर पर है इसलिये बहिर्मुखी है। निद्रावस्था में भी आपकी चेतना बनी रहती है परन्तु आप उसके प्रति सजग केवल जाग्रतावस्था में ही रहते हैं। यही अवस्था उस समय होती है जब आप स्वप्न देखते हैं। चित्त या चेतना सूक्ष्म हो जाती है। शुद्ध चेतना की स्थिति में पहुँचने तक वह सूक्ष्म से सूक्ष्मतम प्रदेश में चली जाती है। चिदाकाश विद्या चेतन को पूर्णतः शुद्ध बनाने का ही अभ्यास है। इसी कारण जब आप चेतना को स्थूल जगत से भी भीतर की ओर ले जाते हैं तो आपको संकेत या दृश्य दिखाई देते हैं। यही सब प्रक्रियाएँ हैं जिनके द्वारा अनुभव ग्रहण किये जाते हैं और वे आंतरिक सूक्ष्म शरीर, चेतना पर एकत्रित होते हैं। यही अनुभव धीरे-धीरे बाहर आते हैं। इन अनुभवों के सूक्ष्म होते हुए भी इनमें कुछ स्थूल तत्त्व होते हैं। इस प्रकार आप देखेंगे कि 'चित्त' चेतना है। चेतना के सीमित अनुभव क्षेत्र से अधिक विस्तृत, सूक्ष्म और अधिक शुद्ध क्षेत्र तक का विस्तार ही 'चिदाकाश विद्या' का उद्देश्य है।

हमारे अन्दर अनन्त प्रकाश है। जब आप नेत्र बन्द करते हैं तो इस विश्व में अनन्त विस्तार को कुछ मात्रा में चेतना के रूप में नापने में समर्थ होते हैं। बन्द आँखों में आपकी दृष्टि अधिक गहराई तक देख सकती है। सुनने की, सूँघने की तथा अन्य इन्द्रियाँ अधिक अच्छे ढंग से कार्य करती हैं। इस प्रकार चिदाकाश गूढ़ बातों का मूर्त रूप है। उसकी कल्पना शक्ति, विचार शक्ति, इच्छा शक्ति के द्वारा वह विश्व के किसी भी क्षेत्र तक पहुँच सकता है। जब आप अन्तर्तम में निवास करते हैं तब चिदाकाश की चेतना के स्तर पर ही आप अपने अस्तित्व के प्रति जागरूक रहते हैं। यद्यपि आप अपने भौतिक अस्तित्व को, अर्थात् अपने शरीर और अंगों को देखने में समर्थ नहीं होते। स्वयं के एवं उसके कार्यों के ये सूक्ष्म और सजीव अनुभव 'चिदाकाश' की पृष्ठभूमि पर उभरते हैं। आपकी चेतना को प्रकट करने के लिए अनन्त, असीम, अविनाशी स्थान 'चिदाकाश', एक मंच है।

यौगिक शरीर विज्ञान

चित्त क्या है—यह समझने का प्रयत्न करने के पूर्व यौगिक शरीर विज्ञान का कुछ ज्ञान रखना चाहिए। यौगिक शरीर विज्ञान के अनुसार कहा जाता है कि मनुष्य विभिन्न प्रकार के बीस तत्त्वों से बना है—१. पाँच कर्मेन्द्रियाँ (क्रियात्मक अंग), २. ज्ञानेन्द्रियाँ (ज्ञान के अंग), ३. पाँच प्राण (प्राण शक्ति), ४. अन्तःकरण का क्षेत्र (अर्धचेतन की सामग्री) और ५. आत्मिक चेतना।

अन्तःकरण—मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार के ज्ञान का सामूहिक नामकरण है। इस प्रकार हमें ज्ञात होता है कि हमारे प्राचीन ऋषि मनुष्य के अचेतन और अर्धचेतन क्षेत्र के प्रति पूर्णतः जागरूक थे। उन्होंने मानव मन के में अनेक महत्त्वपूर्ण अनुभवों को स्पष्ट किया है।

चिदाकाश का स्थान

चित्त असीम चेतना या हमारी आन्तरिक व्यक्तित्व की चेतना है। सभी प्रकार के ज्ञान का वह एक बड़ा खजाना है। भूत, वर्तमान एवं भविष्य की बातों का विस्तृत लेखा वह रखता है। मनुष्य में चेतन और अचेतन दोनों अस्तित्व को छिपाए हुए आन्तरिक चेतना का एक असीम गगन मण्डल है। स्थूल रूप से 'चित्त' की स्थिति अनुभवों के ऊपर मस्तक पर दर्शायी जा सकती है। यह एक ऐसी चेतना है जो ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा उस समय कार्य करती है जब हम बहिर्मुखी रहते हैं। जब हम भौतिक और मानसिक प्रयत्नों के द्वारा बाह्य ज्ञानेन्द्रियों के द्वार बन्द कर देते हैं उस समय भी यह चेतना क्रियाशील रहती है। यह चित्त मानसिक और बौद्धिक उपकरणों द्वारा कार्य करता हुआ ज्ञात होता है परन्तु वह उनकी पहुँच के बाहर है। इसका अनुभव केवल उसी समय होता है जब मन और बुद्धि दोनों इन्द्रियों के साथ अपने स्वाभाविक कार्य बन्द कर देते हैं। चित्त सभी मानवीय क्रियाओं का मूल कारण है। इसलिए उसके विषय में पूर्ण ज्ञान रखना आवश्यक है। चिदाकाश की स्थिति निर्मित करने के लिए मस्तक की हड्डियों के भीतर खोपड़ी की गुहा में किसी स्थान पर अपनी चेतना को बनाए रखिये। नेत्र बन्द करते समय इस बिन्दु पर पकड़ रखिये, जहाँ आपकी चेतना स्थिर रहती है। अधिकतर इसका स्थान मस्तक की हड्डियों से घिरी गुहा में प्राप्त होता है। अतः चिदाकाश पर ध्यान करते समय मस्तक के पीछे का स्थान उस भौतिक आधार का कार्य करता है जिस पर चेतना को एकाग्र करते हैं।

चिदाकाश धारणा का अभ्यास

अब यहाँ 'चिदाकाश विद्या' के अभ्यास का विवरण दिया जा रहा है। यह अभ्यास पाँच चरणों में है।

प्रथम चरण उस अन्धकार के अवलोकन की है जो आपके चित्त को आच्छादित किए हुए है, जब आप आँखें बन्द करते हैं। द्रष्टा की तरह इसे देखते जाइये मानो आपकी मानसिक आँखों के सम्मुख किसी नाटक का प्रदर्शन हो रहा है। द्वितीय चरण में पहुँचने तक यह अभ्यास कीजिए।

द्वितीय चरण में आप अन्धकार की जगह विभिन्न रंग—लाल, पीला, सुनहरा, नीला आदि देखेंगे। यह भी सम्भव है कि अन्धकार सुनहरे रंग में बदल जाय। कुछ समय तक यही क्रिया करते जाइये तत्पश्चात् आगे बढ़िये।

तृतीय चरण में अपनी चेतना को अन्धेरे पर्दे की गहराई में जाने दीजिये जहाँ रंगों का खेल चल रहा है। उसे सघन कीजिए। आपकी एकाग्रता घनी होती जाएगी। यही मानसिक व्यवहार का आधार है। फलतः आपको सावधान रहना है। ध्यान को गहरा कीजिए। साथ ही 'आत्मा की अन्धेरी रात्रि' में चेतना की उड़ान के प्रति द्रष्टा भाव बनाए रखिये। कुछ समय तक यह अभ्यास जारी रखिये। अब चतुर्थ चरण में आइये।

चतुर्थ चरण में चिदाकाश का पूर्ण निरीक्षण कीजिये। ऊपर, नीचे, आगे, पीछे सभी ओर का अवलोकन कीजिए। तब चेतना व्यापक हो जाती है। वह उस व्यक्ति की भाँति व्यवहार करती है जो चारों ओर से अपने को देखने वाली किसी वस्तु की खोज करता है और इस बात से अवगत रहता है कि वह क्या कर रहा है। इसलिए कुछ समय के लिए चिदाकाश का निरीक्षण कीजिए। ऐसा करते समय अपने कार्य के प्रति सजगता रखिये। तत्पश्चात् पंचम चरण पर आइये।

पंचम चरण चिदाकाश के मध्य बिन्दु पर अपनी चेतना रखना है। आन्तरिक आकाश मंडल या चिदाकाश को देखिये और उसके मध्य स्वयं को रखिये। अभ्यास के द्वारा आपकी चेतना सूक्ष्म होकर अधिक गहराई में पहुँचेगी।

इसके बाद चिदाकाश पर अपने इष्टदेव का ध्यान कुछ समय के लिए कीजिए। फिर अभ्यास समाप्त कर दीजिये। चिदाकाश धारणा के अभ्यास के द्वारा आपको चित्त के अस्तित्व का अच्छा अनुभव होगा। उपचारात्मक महत्त्व के लिए शारीरिक एवं मानसिक बीमारी के बचाव एवं उसके निवारण के लिए व्यक्तित्व की इस गहराई तक आपको पहुँचना होगा। अपनी कामना की पूर्ति के लिए आपको चित्त तक जाना होगा। इस विज्ञान के प्रयोगों एवं सूक्ष्म अनुभवों को व्यक्त करना या शब्दों में स्पष्ट करना कठिन है। हमने सम्भवतः सभी सैद्धान्तिक बातों के वर्णन का प्रयास यहाँ किया है। इस क्षेत्र में आपका ज्ञान भी पूर्ण होगा जब आप प्रतिदिन ध्यान के लिए बैठेंगे, उसे ग्रहण करेंगे और उस सूक्ष्म वस्तु की उपस्थिति का ज्ञान प्राप्त करेंगे।

त्राटक

मनुष्य का मन अधिकतर बहिर्मुखी रहता है। जब तक किसी उपाय से उसे अन्तर्मुखी न बनाया जाए तब तक उसे अपने अन्दर का ज्ञान नहीं हो सकता। मन की बहिर्मुखता को रोककर उसे अन्दर की ओर ले जाने के लिए ही योग में प्रत्याहार, धारणा और ध्यान के अभ्यास किए जाते हैं। पिछले पृष्ठों में ध्यान की अनेक साधनाओं को वर्णन दिया गया है। इन सभी साधनाओं का लक्ष्य अन्ततः मन को अंदर की ओर ले जाना ही है। सत्य, ज्ञान आनन्द, शांति, शक्ति आदि अपने भीतर ही हैं। इनकी प्राप्ति के लिये मन के अन्दर गोता लगाना पड़ेगा। त्राटक बहिर्मुखी मन को अन्दर ले जाने की एक महत्त्वपूर्ण साधना है।

त्राटक का अर्थ है किसी वस्तु को बिना पलक झपकाए तथा बिना पुतलियों को हिलाए लगातार एकटक देखना। त्राटक के अनेक साधन हो सकते हैं, जैसे—स्फटिक पर त्राटक, इष्ट देवता के चित्र पर त्राटक, काले बिन्दु पर, जल पर, आसमान में तारे पर, चन्द्रमा पर, दीपक अथवा मोमबत्ती की लौ आदि पर।

त्राटक एक ऐसी क्रिया है जिसके अभ्यास के द्वारा भूत एवं भविष्य की बातों का ज्ञान मिलता है। इस साधना में पूर्णता की प्राप्ति कठिन अवश्य है लेकिन नियमित अभ्यास के द्वारा कुछ सीमा तक सफलता प्राप्त की जा सकती है।

त्राटक में वस्तु के भीतर नहीं बल्कि वस्तु की ओर पूर्णतः सजग होकर देखा जाता है। देखने की क्रिया ठीक उसी प्रकार होती है जिस प्रकार कि हम आईने में देखते हैं। कभी-कभी त्राटक में आँखों पर अधिक तनाव डालने से कुप्रभाव पड़ने की शिकायत आती है। यदि अभ्यासी पूर्ण चेतना रखते हुए वस्तु की ओर ठीक इस प्रकार देखे जैसे वह आईने में अपना प्रतिबिम्ब देखता है तो त्राटक से अनेक लाभ मिलते हैं।

त्राटक की और भी अनेक विधियाँ हैं, जैसे—पानी, अग्नि, धरती, आकाश, बिंदु, प्रकाश या इसी प्रकार की अन्य वस्तुओं पर त्राटक किया जा सकता है। त्राटक के अभ्यास से आँखों की ज्योति बढ़ती है। इसके अभ्यास से मानसिक तनाव दूर होते हैं एवं स्मरण शक्ति बढ़ती है। वास्तव में त्राटक किसी स्थिर वस्तु पर करना चाहिए परन्तु यह आपकी आवश्यकता पर निर्भर है कि आपकी आवश्यकता दृष्टि शक्ति की है या मानसिक शांति की।

चित्र पर त्राटक

अपने इष्ट या गुरु का चित्र लें। उसे अपने सामने इतनी ऊँचाई पर रख लीजिए जिससे बैठने पर चित्र ठीक आँखों के सामने रहे।

इसके लिए किसी स्टूल या चौकी का उपयोग कर सकते हैं।

चित्र न आँखों से नीचा हो न ऊँचा, बल्कि समान ऊँचाई पर हो। आँखों और चित्र के बीच में कम से कम दो फुट या तीन फुट का फासला होना चाहिए। चित्र के सामने आसन बिछाकर अपने ध्यान के आसन में बैठ जाइये। रीढ़ की हड्डी सीधी और शरीर स्थिर रहे। हाथ घुटनों पर रख लीजिए अथवा दोनों हथेलियों को गोद में एक-दूसरे के ऊपर रख लीजिए।

अब अपलक नेत्रों से चित्र को निहारिए।

आँखों पर जोर डालने की आवश्यकता नहीं है।

पुस्तक पढ़ते समय या आईने में अपना चेहरा देखते समय जैसी दृष्टि रहती है उसी प्रकार देखते जाइये। चित्र को लगातार निहारते जाइये।

जब आँखें दुखने लगें या उनमें आँसू भर जायें तो कुछ क्षणों के लिए आँखें बन्द कर लीजिये। पुनः आँखें खोलकर चित्र को निहारिए। आँखों के दुखने पर फिर उन्हें कुछ क्षणों के लिए बन्द कर लीजिए पुनः खोलिये और निहारिए।

इस प्रकार आठ-दस मिनट करने के बाद आँखों को बन्द कर, बन्द आँखों से चित्र को उसी प्रकार देखने का प्रयत्न कीजिये जैसे खुली आँखों से देख रहे थे। कल्पना शक्ति का सहारा लेकर चित्र को बन्द आँखों से दृष्टि के सामने लाने का प्रयत्न करते जाइये।

इस अभ्यास में मन से लड़ने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। यदि चित्र के सिवाय दूसरे विचार आयें तो परेशान होने की आवश्यकता नहीं है। उन्हें धीरे से हटाकर चित्र को सामने लाने का प्रयत्न करते जाइये। इष्ट के चित्र को पूरा-पूरा देखने के बदले किसी एक अंग को केन्द्र बनाकर केवल वहीं पर दृष्टि एकाग्र की जा सकती है। जैसे माथे के तिलक पर, नेत्रों की पुतली पर, नासिका पर, भ्रूमध्य पर, चरण पर इत्यादि। इस अभ्यास को प्रकाश में करना चाहिये, अन्धेरे में नहीं।

दीपक या मोमबत्ती पर त्राटक

पहले के समान ही आसन में बैठें। त्राटक मोमबत्ती अथवा दीपक पर किया जाता है।

दीपक में अंडी का तेल अति उत्तम है। सरसों का तेल भी उपयोग में लाया जा सकता है।

दीपक की लौ को अपलक देखते जाइये। कुछ मिनट के बाद पुनः आँखें खोलकर पहले की तरह अपलक नेत्रों से देखते जाइये।

इस अभ्यास को अन्धेरे में करना चाहिए।

दीपक या प्रकाश पर त्राटक करने से आँख के रोग दूर होते हैं। आँखों की ज्योति बढ़ती है तथा तेजोमय दृष्टि प्राप्त होती है। इसके अभ्यास से भूत तथा भविष्य की घटनाओं का भी ज्ञान प्राप्त होता है।

भूमध्य पर त्राटक

पद्मासन या सिद्धासन में बैठें। दोनों हाथ घुटनों के ऊपर रखें। दोनों आँखों को खुला रखें। अब भूमध्य में अपनी दृष्टि टिकाइये या अपने अन्दर की ओर देखने की कोशिश करें। पलकें झपकेंगी नहीं।

बीच-बीच में विश्राम के लिए प्रारम्भ में कुछ क्षणों के लिए आँखें बन्द की जा सकती हैं लेकिन चेष्टा यही होनी चाहिए कि लगातार दृष्टि भूमध्य पर ही रहे। यही क्रिया आँखों को बन्द कर भी कर सकते हैं।

नासिकाग्र पर त्राटक

यथापूर्व आसन में बैठकर अपनी दृष्टि नाक के अग्र भाग पर ले जाइये।

अन्य नियम ऊपर बताये अनुसार रहेंगे।

नासिकाग्र पर लगातार बिना पलक झपकाये देखते रहें।

५-७ मिनट नित्य अभ्यास करें।

इसका अभ्यास प्रकाश में करना चाहिए। दिन या रात्रि में कभी भी इसका अभ्यास कर सकते हैं।

नभोदृष्टि

ध्यान के आसन में खुले आसमान के नीचे बैठिये।

गर्दन ऊपर आसमान की ओर उठा लीजिये।

पहले आसमान को देखिये, फिर भूमध्य को देखिये।

बिना पलकें झपकाये लगातार ५-७ मिनट यह अभ्यास कीजिये।

इसी प्रकार ऊपर सिर किये हुए नासिकाग्र को भी देखिये।

पलकों को झपकाइये नहीं।

२-३ मिनट से शुरू कर धीरे-धीरे समय बढ़ाते जाइये।

स्वरूप पर त्राटक

ध्यान के अपने आसन पर बैठ जाइये।

अपने सामने एक आईना उसी प्रकार रख लीजिये जैसे प्रथम अभ्यास में इष्ट के चित्र को रखा था।

आईना ठीक आँखों के सामने हो। आईना अच्छी तरह साफ हो। अब आईने में अपने प्रतिबिम्ब पर उसी प्रकार त्राटक का अभ्यास कीजिए जैसे इष्ट या गुरु के चित्र पर किया जाता है। अन्य सब नियम वही रहेंगे।

इस अभ्यास के सिद्ध हो जाने पर साधक अपने सूक्ष्म शरीर को परकाया प्रवेश करने की विधि जान जाता है।

शिवलिंग पर त्राटक

शिवलिंग पर त्राटक सर्वोत्तम अभ्यास है।

शिवलिंग को उसकी पीठ पर स्थापित कर किसी उच्च स्थान पर रखें।

शिवलिंग काले पत्थर का हो तो बहुत अच्छा है।

शिवलिंग पर पहले जल की धारा डालें। उसके बाद उसे साफ कपड़े से पोंछकर उस पर त्राटक करें। त्राटक के नियम पूर्ववत् रहेंगे।

इसका सम्बन्ध हमारे शरीर में पहले से ही स्थित दो शिवलिंगों से है जो शक्ति के दो महान केन्द्र हैं।

शरीर के ये दो लिंग हैं—स्वयंभू और इतराख्य लिंग।

एक का स्थान मूलाधार चक्र में है तथा दूसरे का स्थान आज्ञा चक्र में है। स्थूल शिवलिंग की साधना का उद्देश्य है—स्थूल प्रतीक का आधार लेकर सूक्ष्म को प्रकट करना।

काले शिवलिंग पर त्राटक करने से उसका प्रभाव दृष्टि नाड़ियों के माध्यम से आज्ञा चक्र पर पड़ता है और आज्ञा चक्र में ज्योतिर्मय इतराख्य लिंग सूक्ष्म रूप में प्रकट होता है।

सूर्य पर त्राटक

सूर्य पर भी त्राटक का अभ्यास किया जाता है।

जैसे ही सूर्य उगने का समय हो, ठीक उसी समय बाल सूर्य पर त्राटक करना चाहिए, परन्तु इसके लिये गुरु का मार्गदर्शन जरूरी है।

सूर्य पर त्राटक करने के लिए एक बड़े पात्र में जल भर लें, सूर्य की छाया उसमें पड़ने दीजिये। अब जल में प्रतिबिम्बित होने वाली छाया पर त्राटक का अभ्यास कीजिये।

सूर्य पर त्राटक करने से अलौकिक ज्योतिर्मय पुरुष के दर्शन होते हैं। वे ही रक्षक, देवता और इष्ट बनकर साधकों का मार्गदर्शन करते हैं।

चन्द्रमा पर त्राटक

यह त्राटक हमेशा नहीं किया जा सकता। चन्द्र दर्शन होने पर ही इसका अभ्यास हो सकता है। विचारों को रोककर निर्निमेष नेत्रों से चन्द्रमा को देखते रहना, यही चन्द्रमा पर त्राटक की विधि है।

देखते-देखते चन्द्रमा का स्थूल रूप लुप्त होकर उसका अलौकिक सूक्ष्म रूप प्रकट हो जाएगा। त्राटक के अभ्यास द्वारा हर स्थूल रूप का एक सूक्ष्म स्वरूप प्रकट होता है।

बिंदु पर त्राटक

एक फुट चौड़ा और एक फुट लम्बा काले कागज का एक टुकड़ा लीजिये। एक दूसरे सफेद कागज को चवन्नी के आकार में काट लीजिये।

सफेद गोल कागज को काले कागज के ठीक बीच में चिपका लीजिये।

दिन के प्रकाश में इस काले कागज पर सटे सफेद गोल बिंदु के ऊपर त्राटक का अभ्यास कीजिये।

यह कागज या तो दीवाल पर लगा कर या शीशे में मढ़कर आवश्यकतानुसार ऊँचाई पर टांग दीजिये। गोल कागज नेत्रों के ठीक सामने पड़े। कागज अधिक ऊँचा, नीचा या टेढ़ा न रहे। नेत्र और बिंदु की दूरी दो या तीन फुट हो।

दृष्टि दोष सुधारने के लिए बिंदु पर त्राटक बहुत ही लाभप्रद होता है।

पान पर त्राटक

पान का एक बड़ा पत्ता लेकर जल से उसकी चिकनी तरफ एक गोल बिंदु बना लें। प्रातः सूर्योदय के पूर्व या सूर्यास्त के बाद एक मोमबत्ती जला कर अपने बायीं ओर रखें और पान का पत्ता अपने बायें हाथ में या चौकी पर रखें।

मोमबत्ती इस प्रकार रखिये कि उसका प्रकाश जल बिंदु पर तो पड़े लेकिन आँखों पर न पड़े।

अब जल बिन्दु को दो, चार, छह या दस मिनट तक एकटक निहारिये।
इस अभ्यास को प्रतिदिन एक या दो बार अवश्य कीजिये।

नेत्रों में जलन होने पर पान पर त्राटक करने से बड़ा लाभ होता है।

तत्त्व आकार पर त्राटक

तत्त्व पाँच होते हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। पाँचों तत्त्वों के अपने विशेष आकार और विशेष रंग होते हैं।

पृथ्वी तत्त्व का रंग पीला, जल तत्त्व का श्वेत, अग्नि तत्त्व का लाल, वायु तत्त्व का नीला और आकाश तत्त्व वर्ण रहित है।

पृथ्वी तत्त्व का आकार चौकोर, जल का अर्ध-चन्द्राकार, अग्नि का त्रिकोण, वायु का षट्कोण और आकाश का पूर्ण चन्द्राकार है।

जिस तत्त्व को सिद्ध करना हो उस रंग का कागज लीजिये।

उस पर उसी तत्त्व का आकार बना लीजिये।

ज्यादा अच्छा है कि एक पोस्ट-कार्ड लेकर उस पर तत्त्व के रंग का कागज चिपका लें और किसी गाढ़े रंग से उस पर तत्त्व का आकार खींच लीजिये।

अब इसी तत्त्व आकार पर प्रतिदिन सुबह-शाम त्राटक कीजिये।

एक-एक महीने तक एक-एक तत्त्व-यन्त्र पर त्राटक का अभ्यास कीजिये।

इस तरह तत्त्वों पर त्राटक के अभ्यास से तत्त्व-सिद्धि की प्राप्ति होती है।

छाया पर त्राटक

छाया सिद्धि के लिए साधना का एक ही समय निश्चित कर लेना चाहिए। सूर्य के प्रकाश में सूर्य की ओर पीठ कर खड़े हो जाइए। जिससे आपकी छाया ठीक आपके सामने पड़े।

अपनी छाया के गर्दन के भाग पर त्राटक कीजिए। छाया पर लगातार बीस मिनट त्राटक करने के बाद अपने सामने के आकाश पर देखिए।

इस आकाश में आपको अपनी छाया का प्रतिबिंब दिखाई पड़ेगा।

प्रतिबिंब आपकी मानसिक स्थिति के अनुसार स्पष्ट या अस्पष्ट होगा। वह छाया कुछ देर के बाद लुप्त हो जाएगी।

६ महीने लगातार नियमित छाया-सिद्धि होती है। छाया में दिखाई पड़ने वाले संकेतों को समझने की भी विशेष विधि है। जैसे—यदि छाया का सिर कटा हुआ दिखे तो अपनी मृत्यु, बायाँ हाथ दिखे तो स्त्री की मृत्यु, दाहिना दिखे तो परिवार, मित्र, सगे-सम्बन्धी की मृत्यु। इस छाया का रंग भी बदलता रहता है। सिद्धि प्राप्त हो जाने पर यही छाया हमेशा साथ में रहती है और मित्र की तरह हमेशा अनिष्टों से सावधान करती रहती है। अपनी छाया पर त्राटक एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण तथा गुप्त क्रिया है। छाया-पुरुष की सिद्धि से साधक को दुर्घटनाओं का पूर्व ज्ञान प्राप्त होता है। मृत्यु की सूचनाएँ इसी छाया-पुरुष को सिद्ध करने से प्राप्त होती हैं। पर इस छाया से कोई कल्याण नहीं होता और न कोई आध्यात्मिक लाभ ही होता है। वह न तो कोई सलाह देती है, न मुक्ति और न रक्षा का उपाय ही बतलाती है, जैसे कि देव-शक्तियाँ या दैवी-शक्तियाँ करती हैं।

योगिक चक्रों पर त्राटक

मानव शरीर के अन्दर शक्ति के अनेक केन्द्र हैं, जिनमें सात को मुख्य मानते हैं। प्रत्येक चक्र के अपने आकार, आधार-स्थान, दल, रंग, गुण एवं बीज-मन्त्र आदि होते हैं। इनका अच्छी तरह अध्ययन कर लीजिए और उन चक्रों का स्थान भी याद कर लीजिए।

इसके लिए योग्य निर्देशक की सलाह लीजिए।

उसके बाद आँखें बन्द कर उस चक्र-स्थान पर अन्दर में चित्र की कल्पना कर उसे देखिए।

कुण्डलिनी योग के अभ्यासी इन चक्रों पर ही ध्यान करते हैं। ये चक्र बड़े शक्तिशाली होते हैं।

एक-एक चक्र जागने पर एक-एक सिद्धि प्राप्त होती है। इन्हें यदि अन्य किसी प्रकार अथवा ध्यान के द्वारा जाग्रत कर दिया जाय तो मनुष्य की शक्तियाँ बहुत बढ़ जाती हैं।

चक्रों के नाम तथा उनके स्थान 'चक्र-अनुसन्धान' के अभ्यास के वर्णन में दिए गए हैं।

ज्योतिर्बिन्दु पर त्राटक

आँखें बन्द कर लीजिए।

ध्यान के किसी आसन में बैठ जाइए।

अपने भूमध्य में प्रकाश का एक बिन्दु देखिए।

अभ्यास करते-करते आँखें बन्द करने पर वहाँ पर एक ज्योतिर्बिन्दु दिखाई पड़ेगा।

इसी ज्योति के बिन्दु पर अन्तरंग त्राटक कीजिए।

अन्तर्दृष्टि से उसे देखिए।

ज्योतिर्बिन्दु पर त्राटक करने से अनेक देवी-देवताओं का सान्निध्य प्राप्त होता है।

स्फटिक पर त्राटक

स्फटिक पत्थर पुरानी चट्टानों में पाया जाता है। यह चट्टानों के अन्दर का ही अंश है। जिस प्रकार कोयले की खदान में हीरा मिलता है, उसी प्रकार स्फटिक पहाड़ों एवं चट्टानों में मिलता है। यह पारदर्शी पत्थर है। पानी से भी अधिक पारदर्शी एवं निर्मल होता है। आईने में जिस प्रकार वस्तु का स्पष्ट रूप दिखाई देता है, उसी प्रकार इस पत्थर के आर-पार कोई वस्तु स्पष्ट देखी जा सकती है। इसे 'स्फटिक मणि' भी कहते हैं। अति प्राचीन पर्वतों में यह गोल आकार में प्राप्त होता है। वर्तमान समय में इसे आसानी से प्राप्त नहीं किया जा सकता परन्तु यदि किसी खोजकर्ता को इसकी प्राप्ति हो जाती है तो इसका प्रयोग साधना के लिये किया जा सकता है। इसे किसी धातु के बने आधार पर रखा जा सकता है।

स्फटिक पत्थर एक अलग कमरे में रखा जाना चाहिए।

एक फुट की दूरी पर आँखों की धरातल पर उसे रखा जाय।

साधना के पूर्व पत्थर को पानी से साफ करके साफ कपड़े से पोंछ लेना चाहिए।

तत्पश्चात् उस पर एकाग्रता का अभ्यास करना प्रारम्भ करना चाहिए।

पलकों को बिना झपकाये उसकी ओर एकटक देखना चाहिए। आँखें स्थिर हों।

प्रारम्भ में यह अभ्यास पाँच मिनट किया जाय, बाद में यह अवधि बढ़ाकर आधा घंटा की जा सकती है।

पत्थर की ओर एकटक इस प्रकार देखना चाहिए कि उसके अतिरिक्त अन्य कोई भी वस्तु दिखाई न दे।

इस अभ्यास को एक माह या इससे अधिक कर सकते हैं।

कुछ दिनों पश्चात् आगे का अभ्यास करना चाहिए। इस द्वितीय प्रयोग में साधक

स्फटिक की ओर एकटक देखे लेकिन ऐसा करते समय वह अपने इस कार्य से अनभिज्ञ बना रहे।

सोते समय जिस प्रकार किसी वस्तु को देखने का ज्ञान हमें नहीं रहता, ठीक वैसी ही स्थिति त्राटक के इस चरण में साधक की होती है।

फिर भी सुप्तावस्था एवं इस अभ्यास में बहुत भिन्नता है।

इस अभ्यास के समय नेत्रबिंदु स्थिर होते हैं एवं पलकें झपकने नहीं पातीं या गिरतीं नहीं।

ऐसी कल्पना कीजिये कि आप सो रहे हैं पर आपकी आँखें खुली हैं एवं स्फटिक को एकटक देख रही हैं।

आँखों को इधर-उधर घुमाना नहीं है। इसका प्रतिदिन नियमित अभ्यास करना चाहिए।

इसे सीखना सरल है परन्तु इसका अभ्यास करना कठिन है।

त्राटक साधना के तृतीय चरण में अपने मन को अन्तर्मुखी करना होता है। देखने की क्रिया से मन को हटा दीजिये।

आँखें खुली रहेंगी, वे स्फटिक को एकटक देखती रहेंगी परन्तु मन अन्दर चला जाएगा।

जब मन अन्तर्मुखी हो जाएगा तब किसी प्रकार का विचार या इच्छा नहीं रह जाएगी। इस स्तर पर संभव है कि कुछ साधक स्वप्न देखें या उन्हें नींद का झोंका आने लगे।

कभी-कभी सोने की इच्छा इतनी तीव्र हो जाती है कि साधक आलस्य का अनुभव करता है और सचमुच सोना चाहता है। इस अवस्था में मन धोखा देता है। मन में विचार उत्पन्न होते हैं एवं मन सबसे निम्न स्तर पर उतरने की सलाह देता है।

साधना की इस अवस्था में साधक खुली आँखों से स्वप्न देखेगा।

स्फटिक में स्वरूप चलते, हिलते एवं बोलते हुए मालूम पड़ेंगे।

अर्धनिद्रित अवस्था में स्वप्न देखने की सी अवस्था इस समय रहती है।

स्फटिक में यदि स्वरूप दिखे तो उसमें इस तरह देखना चाहिए कि साधक कुछ देखना या खोजना चाह रहा है।

मन की स्थिति उसे ऐसी बनानी चाहिए मानो वह कोई वस्तु प्राप्त करना चाहता है।

किसी वस्तु के दिखाई पड़ने पर उसका पूरी तरह अवलोकन करना चाहिए। थोड़े ही मानसिक प्रयत्न के बाद सब स्पष्ट दिखाई देगा।

उसे चिंतन करना चाहिए कि स्वरूप किसके समान दिखाई दे रहा था ? वह क्या हो सकता था ? स्वरूप किस बात की ओर इंगित कर रहा था ? उसके हाथ में क्या था ? वह किसके साथ बातें कर रहा था ? उसने क्या कहा ?

इस प्रकार का अभ्यास प्रतिदिन करना चाहिए।

त्राटक की कुछ महत्त्वपूर्ण विधियों का हमने ऊपर वर्णन किया है। अन्य वस्तुओं पर भी इसी विधि से त्राटक का अभ्यास किया जा सकता है। त्राटक साधना में रुचि रखने वालों को इन अभ्यासों में कोई भी एक अभ्यास चुनकर दृढ़तापूर्वक नियमित ढंग से उसका अभ्यास करना चाहिए। नियमपूर्वक अभ्यास करने वालों को अपने मन की शक्ति पर नियंत्रण प्राप्त होता है। मन की एकाग्रता द्वारा वह किसी भी कार्य में सफलता और सिद्धि प्राप्त कर सकता है। चित्त की वृत्ति एकाग्र होने से भौतिक अथवा आध्यात्मिक किसी भी प्रकार की भी सफलता प्राप्त की जा सकती है।

नादयोग

नादयोग ध्वनि विज्ञान है। नादयोग का आधारभूत सिद्धान्त है कि हमारा विश्व एक नाद पर आधारित है। संपूर्ण ब्रह्माण्ड ध्वनि-सिद्धान्तों का रचनात्मक रूप है।

जिनका दृष्टिकोण भौतिकवादी नहीं है, उनका विश्वास है कि शरीर ही अन्तिम वस्तु नहीं है। यह मात्र एक स्थूल स्तर है। इस स्थूल शरीर के अतिरिक्त अत्यन्त सूक्ष्म प्राणिक शरीर है। आप जानते हैं कि प्राण क्या है ? यह जीवन की मुख्य वस्तु है। इसके पाँच विभाग हैं। वे हैं प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान। ये प्राण के क्रियाशील विभाग हैं। इसके अतिरिक्त और भी सूक्ष्म पाँच उपविभाग हैं जो छींकने, आँख झपकने आदि की क्रियाएँ करते हैं। ये उसी प्राणिक ऊर्जा प्राण की क्रियाएँ हैं। हमारे भौतिक शरीर से परे मानसिक शरीर भी है जिसके कारण हममें सोचने की शक्ति रहती है। इसके द्वारा हमारी चेतना के मानसिक स्तर का निर्माण होता है, जो अपेक्षाकृत अधिक सूक्ष्म बौद्धिक स्तर का होता है। इसका अनुभव अधिकतर स्वप्न या दृष्टि में होता है। सूक्ष्मतम पाँचवाँ स्तर पूर्ण चेतना का होता है। योग शास्त्रों में उनका वर्णन अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोशों के नाम से किया गया है। इसलिये योग पर विश्वास करने वालों का कथन है कि भौतिक शरीर ही सब कुछ नहीं है, वह मात्र प्रारम्भिक बिन्दु है।

इसी प्रकार बाह्य ध्वनियाँ ही केवल ध्वनियाँ नहीं हैं। हमारे शरीर में भी चेतना के विभिन्न स्तरों पर अनन्त ध्वनि तरंगें हैं। उनके मिश्रण तथा अदल-बदल से निर्मित होता है। नाद योगियों का कहना है कि प्रारम्भ में केवल एक ही पवित्र ध्वनि ॐ की थी। उसके पश्चात् ध्वनि तरंगों के द्वारा ब्रह्माण्ड की रचना हुई। जिन्होंने बाइबिल पढ़ी हों उन्होंने इस वाक्य पर ध्यान दिया होगा कि 'प्रारम्भ में एक शब्द था'। इस प्रकार सर्वप्रथम ध्वनि के अलावा और कुछ नहीं था। ॐ की सर्वशक्तिमान ध्वनि ही सब ओर, हर तरफ तरंगित हुई। ॐ की इस तरंग से प्रथम ध्वनि-सिद्धान्त की उत्पत्ति हुई। पश्चात् इस सिद्धान्त से पदार्थ का निर्माण हुआ। इस तरह नादयोग के अनुसार सम्पूर्ण रचना ध्वनि-तरंगों का ठोस रूप है और अन्य कुछ नहीं। पारिभाषिक तौर पर यह 'नाद ब्रह्म' कहलाता है (ब्रह्माण्डीय ध्वनि)।

यदि आप संगीत विद्या पढ़ेंगे तो आपको ज्ञात होगा कि प्रत्येक ध्वनि का आकार होता है, वह मात्र तरंग नहीं है। प्रत्येक ध्वनि को वैसी ही आकृति दी जा सकती है जैसी आप एक पत्थर, एक कुर्सी या पत्ते आदि की देखते हैं। ध्वनि का रूप परिवर्तन शक्ति के रूप में किया जा सकता है। इस शक्ति को पुनः ध्वनि का रूप दिया जा सकता है। वस्तु को परमाणु का रूप दिया जा सकता है। जो व्यक्ति आइन्स्टीन के सिद्धान्त से परिचित हैं वे उसे समझ सकते हैं।

इस प्रकार हम जानते हैं कि विश्व में जितने भी पदार्थ हैं, वस्तुएँ हैं उनके मूल में एक ही वस्तु है। केवल आकार में भिन्नताएँ हैं। सभी वस्तुओं में रूप भिन्नता है परन्तु सबमें एक ही तत्त्व अन्तर्निहित है। नाद-योगी आपको बताएँगे कि सभी स्थूल रचनाएँ ध्वनि-सिद्धान्त की तरंगों पर ही आधारित हैं। इससे उनके दर्शनशास्त्र तथा आध्यात्मिक विद्या की रचना हुई।

यौगिक विज्ञान में यह कहा गया है कि हममें कहीं न कहीं ध्वनि है। इसे आंतरिक ध्वनि, स्वर्ग की ध्वनि, अज्ञात की ध्वनि, आकाशवाणी आदि नाम दिया गया है। बोल-चाल की भाषा में 'आत्मा की आवाज' कहा जाता है। यह आत्मा की शुद्ध ध्वनि है। दूसरी वस्तुओं के साथ इसका मेल नहीं करना चाहिए।

हमारे आध्यात्मिक शरीर में एक केन्द्र है जहाँ से, जो वहाँ बैठा है, वह बोलता है। कब और किससे वह बोलता है—इसकी परिभाषा, व्याख्या, वर्णन आदि नहीं किया जा सकता। नादयोग का अभ्यास हमारे मस्तिष्क को सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप प्रदान कर उसे सभी वस्तुगत धारणाओं से पूर्णतः शुद्ध करता है। तब हम उस आवाज को पहचान सकते हैं और सुन सकते हैं।

अभ्यास

प्रारम्भ में आपको कपड़े की मिल से आती हुई आवाज सी ध्वनि सुनाई देगी। अपनी आँखें बन्द कर लीजिए और इसे सुनने का प्रयास कीजिए। यदि आप फिर से आन्तरिक आवाज को अधिक सूक्ष्मता से सुनने का प्रयास करेंगे तो चिड़ियों के कलरव की आवाज सुनाई देगी।

आप गाती हुई कोयल पक्षी की तेज आवाज सुनेंगे परन्तु समस्या यह है कि इन ध्वनियों की पहचान कैसे की जाय? आने वाली ध्वनि को ग्रहण करें, चाहे वह कैसी भी ध्वनि हो।

कुछ समय के बाद ध्वनि समीप मालूम पड़ेगी तथा तेज हो जायेगी। इस आवाज के पीछे से भी कुछ हल्की ध्वनि आती हुई सुनाई देगी। निश्चित रूप से वह धीमी रहेगी।

अब पहली ध्वनि को छोड़कर दूसरी ध्वनि पर ध्यान एकाग्र कीजिये।

कुछ समय के पहचात् यह ध्वनि अधिक समीप एवं तेज जैसी ज्ञात होगी।

कुछ समय की एकाग्रता के बाद आप दूसरी मन्द आवाज सुनियेगा।

पहले की तरह आप इस पर ध्यान केन्द्रित करें, जब तक दूसरी ध्वनि सुनाई नहीं देती। धीरे-धीरे आप एक के बाद एक कई आवाजें सुनेंगे।

हमने केवल तीन ध्वनियों का वर्णन किया है परन्तु अन्य ध्वनियाँ—घंटा-ध्वनि, शंख-ध्वनि, मुरली की ध्वनि आदि हैं। शास्त्र में दस प्रकार की ध्वनियों का वर्णन मिलता है। इसमें प्रारम्भिक आवाज झींगुर की है। ये सामान्य ध्वनियाँ हैं जो अभ्यासी द्वारा सुनी जाती हैं।

प्रत्येक ध्वनि के अनुभव भिन्न-भिन्न होते हैं। कौन सी आवाज सुनाई दी इसका विशेष महत्त्व नहीं है, परन्तु यह व्यक्ति की प्रगति का संकेत करती है। नादयोग के अभ्यास की अनेक विधियाँ हैं।

प्रथम भ्रामरी प्राणायाम का अभ्यास कीजिये।

गहरी श्वास लीजिये।

श्वास छोड़ते समय धीरे-धीरे गुंजन की आवाज कीजिये और गले में विशुद्धि चक्र के स्थान में उस आवाज पर ध्यान केन्द्रित कीजिये।

यह गुंजन की आवाज निरन्तर ३० सेकेण्ड तक कीजिये।

यहाँ आपको ध्वनि पर सजग नहीं होना है।

नादयोग में यांत्रिक रूप से आगे बढ़ना है जब तक कि प्रथम आवाज की उत्पत्ति न हो। इसके बाद आप इस ध्वनि पर ध्यान केन्द्रित कीजिये। यह प्रथम चरण है।

द्वितीय चरण में तर्जनी अंगुलियों से कानों को बन्द कीजिये। श्वास लेकर पहले की तरह श्वास छोड़ते हुए गुंजन की आवाज कीजिये। दाँत कुछ अलग रहें।

ध्वनि करते हुए तरंगों पर ध्यान एकाग्र कीजिये। द्वितीय आवाज का पता लगाने का प्रयास कीजिये, जो इस आवाज के पार्श्व में है। प्रथम अवस्था में यदि आप ॐ का उच्चारण करेंगे तो थोड़ी सतर्कता रखने पर चिड़ियों की धीमी आवाज सुन सकेंगे।

तृतीय चरण में आप कानों को बन्द रखें, और श्रव्य आवाज न करें।

पहली आवाज ही सुनने का प्रयत्न करें चाहे वह किसी प्रकार की हो।

अनुभव करें कि आवाज स्पष्ट रूप से समीप आती जा रही है।

यह प्रथम ध्वनि है।

अब पार्श्व में आप दूसरी आवाज सुनेंगे।

नादयोग के अभ्यास के लिए महत्त्वपूर्ण बात यह है कि तृतीय चरण में कान बन्द कर अन्दर की आवाज को सुनते जाइए।

चतुर्थ चरण में न कान बन्द करें और न आवाज कीजिये।

रात्रि को करीब ११ बजे या प्रातःकाल ४ बजे स्नान कर या हाथ घूँह धोकर आरामदायक आसन में बैठिये।

प्रथम ध्वनि को पकड़ने का प्रयत्न कीजिये।

पहली आवाज सुनें और उसे तेज होने दें ।
तब द्वितीय मन्द ध्वनि उत्पन्न होगी ।
उस पर ध्यान करें और प्रथम ध्वनि पर ध्यान करना बन्द कर दें ।
द्वितीय आवाज को तेज होने दें ।
तत्पश्चात् तृतीय अस्पष्ट ध्वनि निर्मित होगी ।
इसी तरह आपको ध्वनियों पर ध्यान करना होगा ।
आपको अधिक से अधिक सूक्ष्म ध्वनियों का ज्ञान प्राप्त होता जायेगा ।
नादयोग के अभ्यास से मन की निराशा दूर हो जाती है । ध्यान सफल होता है । मन शांत होता है ।

2 ways of first step
 1) विचार अनुभव
 2) विचार विरोध

अन्तर्मौन

आन्तरिक नीरवता

जब आप ध्यान करेंगे तथा भटकते हुए विचारों को एकत्रित करने का प्रयास करेंगे तो आपको कुछ तनाव का अनुभव होगा। इस तनाव के कारण सिर दर्द या अन्य शिकायत उत्पन्न हो जाती है। अतः एकाग्रता के समय ऐसी विधि अपनानी चाहिए जिससे तनाव उत्पन्न न हो। एक थका हुआ व्यक्ति जब बिस्तर पर जाता है, तो बिना परेशानी के उसे तुरन्त नींद आ जाती है। इसी तरह कुछ ऐसी विधियाँ हैं जिनके द्वारा बिना कठिनाई के एकाग्रता एवं ध्यान की प्राप्ति हो जाती है।

एकाग्रता का प्रारम्भ प्रार्थना से करना सर्वोत्तम है। जब हम एकाएक ध्यान प्रारम्भ करते हैं तो रक्त का प्रवाह अचानक मस्तिष्क में बढ़ जाता है। विभिन्न विचार मस्तिष्क में विचरण करते रहते हैं और ध्यान को विचलित करते हैं। दिन में किये गये सम्पूर्ण कार्य-कलाप मानस-पटल पर उभरते हैं। यदि ॐ का ध्यान करते हैं तो स्वाभाविक रूप से आप चाहेंगे कि ॐ के सिवाय और कोई शब्द आपके मानस पटल पर न आए, परन्तु कई कारणों से दैनिक अनुभव और उनके प्रभाव ध्यान के समय उपस्थित होते हैं इसलिए प्रातः काल प्रथम प्रहर ध्यान के लिए सर्वोत्तम समय है। रात को जब तन्द्रा का प्रभाव आप पर होता है तब अपने इष्टदेव के ध्यान में अत्यधिक सफलता मिलती है।

अतः ध्यान के समय कुछ तन्द्रालु अवस्था में पहुँचने के पूर्व आप एकाग्रता का प्रारम्भ मत कीजिए। प्रातः ४ से ६ बजे के मध्य ध्यान करना उत्तम है। कुछ व्यक्ति दिन के किसी भी समय में ध्यान करते हैं। उन्हें अनुभव होगा कि इस समय ध्यान करने से दिमाग पर कुछ तनाव सा प्रतीत होता है।

प्रथम चरण—विचारों का अन्तरबलोकन

ध्यान स्वाभाविक होना चाहिए, यह बात सत्य है। इसका विकास बिना प्रयत्न के होना चाहिए। यदि आप प्रारम्भ से उचित विधि से ध्यान का अभ्यास करेंगे तो आपको कोई कठिनाई नहीं होगी।

अतः इस चरण का अभ्यास ध्यान है। आन्तरिक मौन की क्रम से करने वाली कई विधियाँ हैं। अन्तर्मौन के प्रारम्भ में आपको विचारों से संघर्ष नहीं करना

है। केवल उसे निष्पक्ष भाव से देखते जाना है। यदि विचार मन में आते हैं तो आने दीजिये। बन्द आँखों से द्रष्टा भाव से देखते जाइये। विचारों को रोकने का प्रयत्न मत कीजिये।

विभिन्न विचार आप पर धादा बोलें तो भी स्थिरता नष्ट न होने दें। उन विचारों को दूर करने का प्रयास भी नहीं कीजिये। आँखें बन्द कीजिये और द्रष्टा के समान देखते जाइये। अनुभव कीजिये कि मालगाड़ी की तरह विचार आपके सामने निकलते चले जा रहे हैं। कुछ समय बाद यह अभ्यास बहुत मनोरंजक हो जाएगा।

अभ्यास

अभ्यास प्रारम्भ करने के पूर्व आप अपने मन को विश्रान्त कर लीजिये। किसी भी आरामदायक आसन में बैठ जाइये जिसमें रीढ़ की हड्डी सीधी रहे।

स्वयं को मानसिक रूप से विश्रान्त कीजिये।

आप शायद नहीं समझेंगे कि मानसिक विश्रान्ति क्या है ?

कल्पना कीजिए की धूप में कड़ी मिहनत के बाद जब आप एक ठण्डे कमरे में आकर सोफे पर बैठते हैं तो कितने आराम का अनुभव करते हैं।

विश्रान्ति की क्रिया में भी ऐसा ही अनुभव करेंगे।

विश्रान्ति ध्यान की एक सहायक क्रिया है।

आत्म-प्रस्तावना की विधि भी ऐसी ही सहायक है।

धीरे-धीरे आप प्रक्रियाओं को सीख लेंगे।

किसी गद्दी पर या आराम कुर्सी पर बैठ जाइये और अनुभव कीजिए कि आपको कोई कार्य नहीं करना है।

आप आनन्द का अनुभव कीजिए। इस प्रकार मानसिक रूप से आप अपने को आराम दीजिये।

अन्तर्माँन की इस क्रिया में जागरूक रहिये कि 'मैं सोच रहा हूँ' और यह चेतना पूरे समय बनाए रखनी है।

सजग रहिए कि आप विचारों के साथ बह तो नहीं रहे हैं।

विचारों की क्रिया के प्रति जागरूक रहिये। 'मैं सोच रहा हूँ' की चेतना बनी रहे।

अन्तर्माँन का यह प्रथम अभ्यास है। इस अभ्यास में एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें एकनिष्ठता जरूरी है। यह विधि विचारों की क्रिया में विराम लाती है। इस बात की चेतना बनाए रखिये कि आप केवल द्रष्टा हैं। यदि आप उनके तद्रूप नहीं होंगे तो उनका हास शीघ्र ही हो जाएगा। आप उनसे घबड़ायेंगे नहीं। आप अच्छे विचारों से भी प्रभावित मत होइये। आप यह न सोचिये कि

आपका ध्यान बहुत सुन्दर हो रहा है क्योंकि अच्छे विचार आ रहे हैं। चाहे किसी भी प्रकार के विचारा हों, शुद्ध या अशुद्ध, अच्छे या खराब आप केवल उन्हें देखते रहिये। उनके साथ अपना योग मत कीजिए।

विचारों को द्रष्टा के रूप में देखते समय कभी-कभी मानसिक उझलन की स्थिति आ जाती है। कुछ समय के लिए हम विचारों को देख रहे हैं। तब चेतनावस्था में भ्रम उत्पन्न हो जाता है। हम नहीं जानते कि हम क्या कर रहे हैं। हमें अनुभव होता है कि हम अन्तर्मीन का अभ्यास कर रहे हैं। पुनः हम अभ्यास करते हैं। भ्रम की अवस्था बार-बार आती है, इस अवस्था को दूर करने की एक मात्र विधि यही है कि हम अन्तर्मीन का अभ्यास जारी रखें। क्रमशः आन्तरिक निःशब्दता स्पष्ट होती जाती है और अन्त में अन्तिम चरण में पर हम विचारों को स्पष्ट देख सकते हैं।

एक सफल अभ्यास के बाद विचार एक पुंज के रूप में वहीं रहेंगे। वे छोटे रूप में मानस पटल पर उभरेंगे। फिर प्रत्येक विचार का सूक्ष्म विस्तार हो जाएगा।

प्रथम अभ्यास में अन्तर्मीन विश्रान्तिकरण की क्रिया से प्रारम्भ होता है। द्वितीय बात यह है कि आपको निष्पक्ष द्रष्टा बनना होगा।

तृतीय महत्त्व की बात है कि अच्छे या खराब विचारों से प्रभावित मत होइये। जब विचार सूक्ष्म रूप में आते हैं तो समझिये कि अभ्यास पूर्ण है।

अन्तर्मीन के निरन्तर अभ्यास के बाद आप अपने विचारों को स्पष्ट देख सकेंगे परन्तु यह ध्यान नहीं, ध्यान की पूर्वावस्था है, यह पूर्वाभ्यास है। इस अनुभव की प्राप्ति के बाद आप अपने इष्टदेव का ध्यान साकार या निराकार रूप में कर सकते हैं।

अतः आपको अपने इष्टदेव का सूक्ष्म रूप स्पष्ट दृष्टिगत होगा। आप इस ध्यान का अभ्यास इच्छानुसार जितनी देर चाहें कर सकते हैं।

ध्यान का केन्द्र बिन्दु मस्तिष्क है। यदि वहाँ खून का बहाव कम अधिक होगा तो ध्यान सफल नहीं होगा। ध्यान के लिए मस्तिष्क में खून का अनुपात कितना हो यह बतलाना सम्भव नहीं है। इसे ज्ञात करने के लिए कोई यन्त्र भी नहीं है। सन्तों ने इसका एक उपाय बताया है। जब हमारे विचार स्वप्न का रूप लेकर मानस पटल पर उभरते हैं तब ध्यान के लिए उचित मानसिक अवस्था मानी गई है। जब तक आपके विचारों ने भौतिक रूप धारण नहीं किया है तब तक यह समझिये कि आप ध्यान के लिए तैयार नहीं है और ऐसी स्थिति में आप सरलतापूर्वक ध्यान नहीं कर सकेंगे।

हम अब परीक्षण करेंगे कि इसका अभ्यास कैसे करें और उस समय आपका व्यवहार कैसा रहेगा ?

आँखें बन्द करें। मानसिक रूप से अपने को आराम की अवस्था में लाने

का प्रयत्न करें। विधि यह है कि आप अनुभव करें कि आप आराम करने जा रहे हैं। तनावपूर्ण किसी विचार को मन में याद करें जैसा कि आप साधारणतः करते हैं। शांति, आराम, आनन्द का अनुभव करें। जितना आप अपने को आराम की दशा में लाएँगे उतनी ही अधिक देर आप ध्यान कर सकेंगे। इस आराम की अवस्था का अनुभव करें कि आप कुर्सी पर बैठे हैं या उस पर आरामपूर्वक आपका शरीर है, अर्थात् आप अपने और अपनी स्थिति के प्रति सजग रहें। इसे स्वयं के प्रति सजगता कहते हैं। पैर भी शिथिल रहें। इसके लिए कुछ समय लगेगा। शिथिलीकरण की क्रिया प्रारम्भ में तनावपूर्ण लगती है परन्तु बाद में शांति देने वाली हो जाती है।

बन्द आँखों से मस्तक के अन्धकार को देखें। क्या इस अन्धकार के रंग में परिवर्तन हो रहा है ? क्या आप वहाँ तारा या कुछ और देखते हैं ? कुछ व्यक्तियों को वहाँ तारा, प्रकाश, रोशनी या कुछ व्यक्तियों को अन्धकार दिखाई देता है। आपको कुछ दृष्टिगोचर हो या न हो, इसकी चिन्ता मत कीजिए। केवल इस पर ध्यान करते जाइये। बहुत से विचार उत्पन्न होंगे। उनका त्याग करें। वे विचार, शब्द या अनुभव हो सकते हैं। आप शरीर पर खुजलाहट या कंपकंपी का भी अनुभव करेंगे। इन सब अनुभवों को देखते रहें। किसी विचार, अनुभव, ध्वनि आदि से तद्रूप मत हों। इसकी समाप्ति के बाद आप अन्तर्मन के वास्तविक अभ्यास के लिये अग्रसर हो सकते हैं।

द्वितीय चरण—विचारों का नियमन

मन में कई विचार उत्पन्न होते हैं। ऐसा ज्ञात होता है मानो हमारे भीतर से कोई अदृश्य शक्ति, लहर उत्पन्न हो रही है। हम कुछ भावनात्मक विचारों को नहीं चाहते, परेशानी एवं चिन्ता में नहीं पड़ना चाहते। परन्तु बहुत प्रयत्न करने के बाद भी हम विचारों की उन तरंगों को नहीं रोक पाते।

यह इस बात का प्रमाण है कि मन हमारे नियंत्रण में नहीं है। इन शक्तिशाली विचारों को उचित स्थान में बनाए रखने के लिए कोई शक्तिशाली क्रिया आवश्यक है।

यह यदि समय पर नहीं किया गया तो मनोभंग की अवस्था आ जायेगी, फलस्वरूप, तब मानसिक तनाव से मुक्ति के लिए प्रशान्तकों, मादक द्रव्यों और कल्पनाओं का सहारा लेना पड़ेगा। यदि विचार तरंगों समय से नियंत्रित नहीं होती हैं तो मनोभंग की अवस्था में आ जायेगा और वे ही हमारी आदत बन जायेंगे। फिर तो उन्हीं के सम्मोहक संगीत में हम अपना आनेवाला सारा जीवन नष्ट कर लेंगे। हम तो केवल संकाटापन्न स्थिति में ही जागते हैं जब सारी संभावनायें हाथों से निकल गई होती हैं।

हम जागते तो हैं पर जब तन्त्रिका-स्वास्थ्यभंग शुरू हो जाता है, मनो-ज्वर

या मनोविकार जैसे रोग प्रकट हो जाते हैं। पर उनके नियंत्रण में काफी विलम्ब हो गया होता है। यदि संकट शुरू होने के पूर्व ही सावधानी बरती जाय, अपनी मानसिक आदत के रूप में विचार नियमन कर लिया जाय ये अनेक मानसिक रोग हों ही नहीं।

तब क्या उपाय है ? योग में एक विधि का वर्णन किया है। इस विधि के प्रयोग द्वारा व्यक्ति अपने विचारों का मालिक बन सकता है। विचारों को नियंत्रित करने की आवश्यकता है। मन को मारने की भी जरूरत नहीं, केवल उसे विचारों का नियमन करना है। जिसने मन पर अधिकार पा लिया वह अपने मन को शिक्षित नौकर की तरह रख सकता है। यह उसके लिये अनेक रूपों में सहायक होगा। मन को प्रशिक्षित करने की विधियों में एक विधि वही है जो अंतर्मन में द्वितीय चरण के रूप में वर्णित की गई है।

अंतर्मन के इस द्वितीय अभ्यास में एक विशेष विचार उत्पन्न किया जाता है। इस पर कुछ देर विचार करते हैं। पश्चात् उसे पूर्णतः समाप्त कर दिया जाता है।

इसमें अपनी इच्छानुसार कोई विचार उत्पन्न करते हैं। उस पर कुछ देर विचार करने के बाद उसे अपनी इच्छा शक्ति द्वारा अलग कर दिया जाता है।

● यह अधिक अच्छा होगा कि आप निम्न कोटि के विचार से प्रारम्भ करें। क्रोध, घृणा, लालच या इसी तरह का विचार उत्पन्न करें तथा उस पर विचार करें। कुछ समय बाद मानसिक धक्के से उसे हटा दें। कारण यह कि मन में निम्न विचार जल्द उत्पन्न होते हैं। और निम्न विचार ही मस्तिष्क में तनाव पैदा करते हैं। अच्छे विचार को जल्द दूर करना एक बड़ा काम है। ईर्ष्या, क्रोध, लालच, भय, अहं, भावनात्मक विचार आदि का मस्तिष्क पर अधिक देर तक प्रभाव बना रहता है। जबकि शांति, प्यार, क्षमा आदि भाव अधिकतर ध्यान के समय अनुपस्थित रहते हैं। अच्छे संकल्प भुला दिए जाते हैं, कुविचार बने रहते हैं।

अतः आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए—विशेष विचार का निर्माण करें। विभिन्न प्रकार की कल्पना के साथ इस विचार को बनाए रखें। पश्चात् उस विचार को हटा दीजिये। इस विधि का अभ्यास कुछ दिन करने से आपको एक ऐसी प्रक्रिया का ज्ञान हो जाएगा जिसके द्वारा आप किसी ऐसे स्थानीय विचार को दूर कर सकेंगे जो आपको परेशान करता हो। अन्तर्मन का यह अभ्यास समाप्त होने पर आप अपने इष्ट का ध्यान कर सकते हैं। यह बताया जा चुका है कि इस अभ्यास के बाद आप इष्टदेव का आंतरिक दर्शन कर सकेंगे, जिनकी उपासना आप करते हैं, यदि ध्यानावस्था तथा ज्ञान की प्राप्ति हो।

अभ्यास

अब अन्तर्मौन का अभ्यास करना है।

कोई विचार लाइये।

उसे कुछ देर बनाए रखें, फिर हटा दें। इस प्रकार अभ्यास करते जाइये।

चाहें तो विचार का चुनाव कर लीजिये। पर एक बात ध्यान में रखिये कि विचारों के साथ तद्रूप न होइये।

आप जो कर रहे हैं उसके प्रति लगातार सजग रहिए।

किसी अनिच्छित विचार का प्रवेश न होने दीजिये।

स्वेच्छा से आए विचारों को हटा दीजिये।

स्वतः आनेवाले विचारों को हटा दीजिये। अपनी इच्छा से विचार लाइये, उसे कुछ देर तक रोकिये और पुनः उसे हटा दीजिये।

विचार से आसक्त न रहें।

अनासक्ति के साथ अभ्यास करें।

स्पष्ट रूप से कल्पना करें कि आप क्या सोच रहे हैं।

कभी-कभी सोचते समय भ्रमात्मक स्थिति उत्पन्न हो जाएगी।

आप यह परीक्षण नहीं कर सकेंगे कि आप क्या सोच रहे हैं।

जैसे ही यह स्थिति आती है आप तुरन्त अपने इष्ट का ध्यान प्रारम्भ कर दें।

अपने इष्ट देव पर ध्यान करते समय कुछ बातें याद रखें। सामान्य अवलोकन द्वारा अपने इष्ट पर विचार करने का प्रयत्न करें। इष्टदेव के पूर्ण चित्र के विषय में सोचें। उस स्थान का ध्यान करें जहाँ वह चित्र है। उसके चारों ओर की बातों का विचार करें।

सामान्य से विशेष की ओर कल्पना करते जाएँ।

तत्पश्चात् अपनी सुविधानुसार इसी अभ्यास को दुहराते जाएँ।

तृतीय चरण—विचारों की भ्रमपूर्ण अवस्था

अब हम तृतीय चरण पर विचार विमर्श करेंगे। इसके पूर्व विश्रान्ति तथा अन्तर्मौन के मध्य आने वाली कठिनाइयों पर विचार किया गया है।

मुख्य समस्या है नींद की। इसका अनुभव विश्रान्ति के अभ्यास के समय विशेष होता है। पहले आलस्य है तत्पश्चात्, गहरी झपकी आती है। जिन्हें अत्यधिक तनाव है उनके लिए नींद आवश्यक है परन्तु जिन्हें आध्यात्मिक उन्नति करनी है उन्हें इस तकलीफ को दूर करने का उपाय निकालना जरूरी है। यदि आप समाधि की प्राप्ति चाहते हैं, आध्यात्मिक उत्थान चाहते हैं, सूक्ष्म शरीर से सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं, कुण्डलिनी जाग्रत करना चाहते हैं, तो इस कठिनाई पर नियंत्रण पाना आवश्यक है। इस कठिनाई पर नियंत्रण प्राप्त करने

की क्रिया का ज्ञान होना आपके लिए आवश्यक है। सभी साधकों की यही शिकायत है कि जैसे ही उन्हें अन्तर्मौन की स्थिति प्राप्त होती है वे निद्रित हो जाते हैं, जिसका ज्ञान उन्हें जागने पर ही होता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वे ताजगी का अनुभव करते हैं परन्तु उनका आध्यात्मिक विकास रुक जाता है। सच्चे साधकों का विकास भी इसीलिए रुक जाता है कि वे नींद में पहुँच जाते हैं। गृहस्थों को कई कार्य करने पड़ते हैं, हमेशा व्यस्त रहना पड़ता है, उन्हें निरन्तर तनाव होता है, अतः थोड़ी एकाग्रता के बाद ही स्वाभाविक निद्रा आ जाती है।

परन्तु एक कठिनाई यह है कि यदि चेतना तन्द्रा में न रहे तो अन्तर्मौन की प्राप्ति कठिन है। कुछ परिमाण में मस्तिष्क को निद्रित अवस्था में रखते हुए इस बात के प्रति चेतना बनाए रखना है कि नींद न आए। उनके लिए आवश्यक है कि वे कुछ बातों को ध्यान में रखें।

सर्वप्रथम आपको अनासक्ति का अभ्यास करना चाहिए। निरन्तर अभ्यास के द्वारा विचारों का आना रोका जाना चाहिए। यह एक उपाय है। दूसरी विधि यह है कि जब आपको नींद का आभास हो, आप तुरन्त कुम्भक के साथ प्राणायाम प्रारंभ कर दीजिये। अनुपात १ : ३ : २ का रहे। इसकी तीन या चार आवृत्तियाँ कीजिए। यह उन व्यक्तियों के लिए है जिन्हें लगातार विचारों के कारण अधिक तनाव होता हो, निराशाजनक विचार उत्पन्न होते हों। यदि आप निराशा को कम कर लेंगे तो अपने ध्यान की वस्तु को स्पष्ट देख सकेंगे।

कुछ व्यक्ति पद्मासन में बैठकर एक ही बार में कई घण्टे ध्यान करते हैं और समाधि का अनुभव प्राप्त करते हैं, परन्तु यह समाधि की अवस्था नहीं है। यह प्रतिदिन के तनाव के बाद में पड़ने वाला प्रभाव है। लम्बी अवधि के इस ध्यान द्वारा आप मानसिक तनाव दूर कर सकते हैं परन्तु अध्यात्म मार्ग में आगे नहीं बढ़ सकते। सर्वाङ्गासन या शीर्षासन का भी अभ्यास कर सकते हैं। आसनों के द्वारा नींद के कारणों को रोका जा सकता है। बिस्तर से उठिए, हाथ मुँह धोकर आसन में बैठिए। तब भ्रमपूर्ण अवस्था नहीं रह जाएगी।

कुछ साधक ध्यान के लिये बैठते हैं परन्तु यह नहीं जानते कि वे क्या कर रहे हैं। कुछ व्यक्ति कुण्डलिनी के बारे में सुनते हैं। उसे जाग्रत करने के लिये विशेष दबाव डालते हैं। इससे तनाव उत्पन्न होता है। इस तरह ध्यान के समय नींद दूर करने के लिए हल्का भोजन, योगासन, प्राणायाम बहुत सहायक है।

नींद रोकने की अन्य यौगिक विधियाँ भी हैं। उनमें से एक है उज्जायी, गहरी श्वास क्रिया द्वारा शरीर संस्थान का कार्बन डायोक्साइड बाहर निकालना, जैसा कि एक स्वस्थ मनुष्य के सोते समय होता है।

जब आप आँखें बन्द कर ध्यान करते हैं और जो दृश्य सामने आते हैं वे अस्थायी रूप से चेतना की भ्रमित अवस्था है। पुनः दृश्य फिर भ्रम एवं दृश्य

उत्पन्न होता है। यह ध्यान की प्रारम्भिक अवस्था है क्योंकि मानसिक स्तर पर संस्कार उभरते हैं।

आप कई अनिश्चित बातों को भूलना चाहते हैं। उन्हें अस्वीकार कर देते हैं। अतः वे पार्श्व स्तर में चले जाते हैं। कुछ समय बाद इसका विपरीत प्रभाव पड़ता है। अपनी समस्याओं को युक्तिसंगत विधि से दूर कीजिये या उसके प्रति अनासक्ति का भाव रखिये परन्तु आपको पसन्द न होने का तात्पर्य यह नहीं कि विचार चला जाए। अपितु वह आपके मन में अधिक स्थाई रूप से स्थान बना लेगा। 'ध्यान' में उसकी याद आपको तंग करेगी। अतः चाहे कितनी भी कठिनाई क्यों न हो उसका अस्तित्व मिटा देना चाहिए या अनासक्ति के द्वारा उस विचार को निर्मूल कर देना चाहिए। प्रारम्भिक ध्यानावस्था में नींद और दृश्य का आना द्वितीय कारण है। इस समस्या के हल का एकमात्र उपाय यही है कि ज्ञानयोग की विधि द्वारा प्रतिदिन के तनावों को दूर करने के पश्चात् यौगिक ध्यान किया जाय। नींद अच्छी बात है इसमें सन्देह नहीं। इसीलिए सूक्ष्म वस्तुएँ दृश्य रूप से उभरती हैं, परन्तु जो जिज्ञासु उच्च अवस्था की प्राप्ति चाहते हैं उन्हें हर तरह के आराम से दूर रहना है। अन्तर्मान का निम्न अभ्यास वास्तविक आराम से दूर और 'ध्यान' की सत्य अवस्था की ओर ले जाने वाला प्रथम चरण है।

अभ्यास

आँखें बन्द कर लें।

चिदाकाश पर ध्यान करें। वहाँ की प्रत्येक वस्तु को देखते जाएँ। वहाँ आपको विभिन्न रंग के प्रकाश, जलती हुई बत्तियाँ, सूक्ष्म रूप आदि के दर्शन होंगे। द्रष्टा बनकर इन्हें देखते जाएँ।

चिदाकाश या सूक्ष्म आकाश आपके सम्मुख है।

यदि आपको ध्यान का अच्छा अनुभव है तो आप अर्धचेतन मन की बातें वहाँ देख सकते हैं। प्रत्येक आने वाले विचारों को एक तरफ रखें तथा उनके प्रति चेतना को बनाये रखें।

इन्हें एक ओर व्यवस्थित करने में आप व्यस्त रहेंगे। दूसरी तरफ इस बात को देखने में जागरूक रहें कि चिदाकाश में क्या दिखाई दे रहा है।

यदि आप ऐसा कर सकेंगे तो ध्यान की एक सीढ़ी ऊपर पहुँच जाएँगे।

तब आपको अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ेगा।

तत्पश्चात् आप सूक्ष्म अवस्था के दृश्य देखते जाएँगे।

आप दरवाजे पर खड़े हैं। आप आते हुए विचारों को देखते जा रहे हैं। आपके आंतरिक कक्ष के सभी दरवाजे खुले हैं, जिनसे विचार प्रवेश कर सकते हैं। विचार किस ओर से आ रहे हैं ?

आप मध्य स्थान ग्रहण करें और वहाँ से प्रत्येक दिशा में दृष्टि बनाए रखें। जब आप किसी विशेष विचार को छिपते हुए पाते हैं, तो यह क्रिया बन्द कर दें। यदि इस साधना में अंशतः भी सफलता आपको प्राप्त हो जाती है तो आपको इष्ट पर ध्यान करने की कोई आवश्यकता नहीं।

स्वाभाविक रूप से अन्तः में इष्ट का स्वरूप उत्पन्न होगा।

इस क्रिया को यदि आप पूरी ईमानदारी से करेंगे तो आपको निर्विचार अवस्था की प्राप्ति होगी।

चिदाकाश पर निरंतर चेतना बनाए रखें। उस पर आने वाले सूक्ष्म रूप को देखते जाएँ। चिदाकाश में अनेक अदृश्य तरंगों का अनुभव आपको होगा। क्रमशः चिदाकाश के प्रति अधिक जागरूक बनने का प्रयास करें। चेतना को इतना गहरा बनाइए कि आपको क्षण भर के लिए भी चिदाकाश से दृष्टि हटाने की इच्छा न हो। प्राप्त अनुभवों की व्याख्या नहीं की जा सकती।

इस तरह जब आप शून्य की स्थिति का अवलोकन करेंगे तो आपको ऐसी सूक्ष्म बातों का अनुभव होगा जो अभी तक दृष्टि से परे थीं।

मस्तिष्क की एक ऐसी स्थिति आएगी जब सूक्ष्म प्रदेश की सभी बातें आपके सम्मुख रहेंगी और सम्पूर्ण गुह्य ज्ञान की प्राप्ति आपको होगी।

जैसे चिदाकाश पर सूक्ष्म बात दिखाई देती हैं वैसे ही इष्ट देवता का शांतिपूर्वक ध्यान प्रारंभ कर दीजिये। आप पूरी प्रक्रिया की पुनरावृत्ति कर सकते हैं। प्रारम्भिक साधक को इस अभ्यास को अधिक नहीं करना चाहिए क्योंकि यह विश्रान्ति के अभ्यास से भिन्न है।

इस अभ्यास के साथ आप विश्रान्ति का प्रारम्भिक अभ्यास करें और 'ध्यान' की प्रथम अवस्था में प्रवेश करें।

'ध्यान' की इस कक्षा को पार कर आप आगे 'ध्यानावस्था' में पहुँचें जो इस प्रथम ध्यान से ऊँची और गहरी है।

जो व्यक्ति समाधि के ज्ञान के अवस्था तक पहुँचना चाहते हैं उन्हें एक बात के प्रति सावधान रहना चाहिए कि उन्हें वैज्ञानिक रूप से विश्रान्ति की क्रिया सफलतापूर्वक करने के बाद ही 'ध्यान' प्रारम्भ करना चाहिए।

यदि वे ऐसा नहीं करेंगे तो हमेशा आलस्य एवं नींद की शिकायत करेंगे। एक दम से ध्यान प्रारम्भ करने वालों की तरह असफल रहेंगे।

योगनिद्रा

योगियों को निद्रा की जिस कला का ज्ञान है उसका अभ्यास बहुत सरल और उपयोगी है। यदि इस कला को कुछ संशोधन के साथ सर्वसाधारण को समझाया जाय तो यह अनन्त लाभ प्रदान करने वाली सिद्ध होगी। यह सोने की कला है। इसे आध्यात्मिक नींद कह सकते हैं।

बहुत कम लोगों को इस बात का ज्ञान है कि किस प्रकार सोना चाहिए। अधिकतर लोग पढ़ते या कुछ विचार करते हुए सोते हैं। सोचने की क्रिया के बीच नींद कब आती है इसका उन्हें ज्ञान नहीं रहता। विचारों से उलझे मन के साथ सोना शरीर एवं मन के लिए लाभदायक नहीं है। परेशान एवं उलझे हुए मन से सोना उत्तम नहीं है। इस प्रकार की नींद शरीर को पूर्ण आराम नहीं पहुँचाती। थकावट इससे दूर नहीं होती। व्यक्ति को खराब स्वप्न आते हैं, पाचन क्रिया ठीक नहीं रहती एवं प्रातःकाल उन्हें प्रफुल्लता और शक्ति का अनुभव नहीं होता। इस प्रकार की नींद अस्वास्थ्यकर एवं अवैज्ञानिक है। आपको इस बात की शंका हो रही होगी कि नींद की क्रिया में ऐसी कौन सी बात विशेष है जिसे सीखने की आवश्यकता पड़ती है। प्रत्येक के लिये नींद आवश्यक है। सीखने की कोई विशेष बात नहीं है। परन्तु आप अनुभव करेंगे कि नींद जीवन की महत्त्वपूर्ण क्रिया है। नींद का प्रभाव मन पर, सक्रियता पर, स्वभाव पर, चरित्र पर और बुद्धि पर पड़ता है।

एक उदाहरण लीजिए—यदि आप प्रातः जल्दी उठने की आदत डालेंगे, उसे दृढ़ता से प्रतिदिन के जीवन में व्यवहारिक रूप देंगे तो आपके जीवन में उसका पूर्ण प्रभाव आपके जीवन से संबंधित सभी बातों पर पड़ेगा। सर्वप्रथम आप अपने को शक्तिवान, ताजा तथा मजबूत पाएंगे। यदि आप समयाभाव की शिकायत करते होंगे तो अब आपको ज्ञात होगा कि दिन बहुत लम्बा है और कार्य उतने नहीं है। एक या दो दिन के लिए नहीं बल्कि यदि जीवन पर्यन्त भी आप ऐसी दिनचर्या बनायेंगे तो ऐसा ही अनुभव करेंगे। हर समय आप पूर्ण स्वस्थ रहेंगे। कठिन कार्य के बाद आपको थकान का अनुभव नहीं होगा। नींद न आने की शिकायत नहीं रहेगी। मन हमेशा प्रसन्न और शान्त रहेगा। जीवन के प्रत्येक क्रियाकलाप में आप सफल होंगे। शर्त यही है कि इस नियम के पालन में आपको दृढ़ बनना पड़ेगा तभी आप इसके परिणाम से परिचित होंगे। एकमात्र यही नियम

आप में निहित सब शक्तियों को जाग्रत करने में समर्थ होगा। आप अपनी इच्छाशक्ति के मालिक होंगे।

नींद को बिना किसी प्रकार का महत्त्व दिए प्रत्येक व्यक्ति स्वाभाविक, साधारण विधि से नींद लेता है। यह अतिशयोक्ति न होगी कि कोई भी सांसारिक व्यक्ति सोने की वैज्ञानिक विधि नहीं जानता। कोई गृहस्थ नहीं जानता कि नींद कैसे ली जाए। गृहस्थों को कठिन कार्य करना पड़ता है। यदि वे नींद की मानसिक विधि सीख लें तो उन्हें विशेष लाभ प्राप्त होगा। वे लोग कम समय में ही नींद पूरी कर लेंगे या न्यूनतम अवधि में अधिकतम लाभोपार्जन कर सकेंगे।

साधारणतः बिस्तर छोड़ने के बाद व्यक्ति शरीर में थकान तथा सिर में भारीपन का अनुभव करता है। कुछ व्यक्ति जागने पर सुस्ती का अनुभव करते हैं। वे बिस्तर से उठना नहीं चाहते और आधे सुस्त और आधे जाग्रत अवस्था में पड़े रहते हैं। बहुत से व्यक्ति ऐसे हैं जो आठ घंटे या उससे भी अधिक लम्बी नींद लेते हैं परन्तु ऐसा अनुभव करते हैं कि उनकी नींद पूरी नहीं हुई है। साधारणतः स्वस्थ व्यक्ति के लिए आठ घंटे की नींद काफी ही नहीं है बल्कि आवश्यकता से अधिक है। कुछ लोगों को पुस्तक या उपन्यास पढ़े बिना नींद नहीं आती। स्वास्थ्य के लिए यह आदत भी खराब है। लेटे हुए पढ़ते समय आँखों पर विशेष दबाव पड़ता है। परिणामतः अधिक दबाव के कारण वे थक जाती हैं और शरीर में आलस्य आने से नींद आ जाती है। यह नींद का गलत तरीका है। कुछ लोग ऐसे हैं जिन्हें पैरों में मालिश किए बिना नींद नहीं आती। यह विधि खराब ही नहीं बल्कि खासकर वात से पीड़ित लोगों के लिये खतरनाक भी है। यदि व्यक्ति घर से बाहर है और ऐसी सुविधा नहीं है तो उसे नींद ही नहीं आती। इन्हें हम नींद के रोग ही कहेंगे। नींद प्राकृतिक हो तथा उसे उचित तथा स्वाभाविक रूप से आनी चाहिए।

एक और समस्या है। वर्तमान युग का व्यक्ति पूरे समय अत्यधिक कार्य में जुटा रहता है। आधुनिक, औद्योगिक और भौतिक युग में महत्वाकांक्षाओं एवं आदर्शों के पीछे दौड़ता है। लोगों के व्यस्त जीवन का दृश्य बड़े शहरों में दिखाई देता है। कुछ व्यक्ति ऐसे हैं जो विभिन्न कार्यों में इस तरह व्यस्त हैं कि उन्हें उचित आराम करने या सोने का समय नहीं मिलता। उनके लिए यह एक समस्या है। व्यापारी, डॉक्टर, सामाजिक, कार्यकर्ता, सरकारी या अन्य बड़े कर्मचारी सभी के पास नींद सम्बन्धी कठिनाइयाँ हैं। योगनिद्रा एक ऐसा सुनहरा नियम है जो सभी के लिए निर्धारित किया जा सकता है, जिसके द्वारा वे नींद की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं। केवल तीन घंटा बिस्तर पर लेट कर ही वे २१ घंटे के कार्य की थकान दूर कर सकते हैं। नेपोलियन ऐसा व्यक्ति माना जाता है जो सबसे कम सोता था। कहा जाता है कि कई दिनों तक उसे घोड़े के पीठ पर ही रहना पड़ता था और वहीं अपनी नींद

पूरी कर लेता था। गांधी जी भी कम सोने वाले व्यक्ति थे। उनके कठिन और निरन्तर बौद्धिक कार्यों से सब परिचित हैं। उनकी सफलता का क्या रहस्य है ? सच्चे अर्थों में वे योगी थे। उनके पास मन की पूर्ण एकाग्रता थी। गहरी एकाग्रता के साथ अपने उद्देश्य की पूर्ति में वे लगे हुए थे। एकाग्रता में असीम शक्ति है कहा गया है कि योगी कभी नहीं सोते। पूरी चेतना के साथ उनका मन अपने उद्देश्य प्राप्ति की ओर लगा रहता है। योगी अपनी नींद को समाधि में परिवर्तित कर देता है।

जिस तरह सोते समय शरीर आराम करता है उसी तरह मस्तिष्क को भी आराम मिलना चाहिए। रात्रि में भी मन का भटकना बन्द नहीं होता। विभिन्न विचारों को लिए हुए जब हम सोते हैं तब भावना, क्रोध, लालच, अभिमान, आसक्ति आदि के विचार अनेक रूप में हमारे सामने आते हैं। जब मन इधर-उधर भटकता रहता है तो व्यक्ति को अच्छी नींद नहीं आती और भयंकर स्वप्न दिखाई देते हैं। मन शान्त नहीं रहता। ताजगी का अनुभव नहीं होता। निरर्थक घटनाओं पर आधारित कामनापूर्ण विचार मध्यरात्रि में आते हैं और आत्मा को इधर-उधर भटकाते हैं तथा उसकी थकावट के कारण बनते हैं। इन अवांछित विचारों को दूर करने की आवश्यकता है। यदि मन को इन विचारों से अलग कर एक विशेष दिशा में निर्देशित किया जाय तो व्यक्ति को मानसिक शांति और आनन्द की प्राप्ति होती है।

नींद समाधि की ही निम्नतर अवस्था है। सोते समय व्यक्ति सांसारिक चिंता, परेशानी, थकावट आदि भूल जाता है और एक दूसरे लोक की यात्रा करता है। किसी प्रकार के दुर्व्यवहारों का प्रभाव उस पर नहीं पड़ता। समाधि में भी व्यक्ति को सांसारिक बातों का ध्यान और अनुभव नहीं होता। अंगों से भी किसी प्रकार का संदेश प्राप्त नहीं होता। परन्तु निद्रा और समाधि में भिन्नता है। नींद की अवस्था में व्यक्ति को अपने को नियंत्रित रखने का न तो ज्ञान होता है और न इसकी शक्ति रहती है। समाधि में यद्यपि अंगों द्वारा उसे सांसारिक बातों का अनुभव नहीं होता परन्तु वह आत्मिक रूप से जाग्रत रहता है और उसे उसी प्रकार का ज्ञान होता है परन्तु वह अत्यन्त ऊँची आध्यात्मिक अवस्था है। यह उच्चतम अवस्था है जब व्यक्ति पूर्ण ज्ञान और प्रकाश की अवस्था में रहता है।

साधारणतः कुछ व्यक्ति कम या अधिक मात्रा में अनिद्रा से परेशान हैं और कुछ अत्यधिक नींद के शिकार हैं। यदि हम इस पर शान्त एवं पवित्र मन से विचार करें तो ज्ञात होगा कि हम कितना लम्बा और अमूल्य समय नींद में व्यर्थ नौवा देते हैं। यदि इस अमूल्य समय का सदुपयोग हम कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य के लिये करते तो आश्चर्यजनक परिणाम की प्राप्ति होती।

सारांशतः यदि हम आवश्यक समय ही नींद के लिए दें तथा अन्य समय अपने जीवन के लिए या दूसरों के लिए रचनात्मक कार्य करें तो हम समाज में

उच्च स्थान प्राप्त कर सकते हैं। अनुपयोगी नींद के लिए जो समय हम खर्च करते हैं उसका सदुपयोग अध्ययन, धनोपार्जन, लोक सेवा, आत्म ज्ञान के लिए और आध्यात्मिक अभ्यास में करें तो अधिक अच्छा हो।

जब लघु निद्रा पर्याप्त है तब दीर्घ निद्रा की कोई आवश्यकता नहीं है। हम सबके लिए निद्रा विज्ञान का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। नींद किस प्रकार की हो ? हमें कितनी देर सोना चाहिए ? थकावट को किस तरह जल्द दूर करें ? मानसिक तनावों को कैसे हटावें ? किस प्रकार न्यूनतम समय में शरीर और मन की थकावट दूर करें ? किस प्रकार की नींद की व्यावहारिक विधियों का वर्णन यहाँ किया जाएगा।

अत्यधिक निद्रा आलस्य का सूचक तथा अनिद्रा मानसिक तनाव का कारण है। दोनों ही उचित नहीं है।

असावधानीपूर्वक एवं उलझनपूर्वक विचारों के साथ सोना ठीक नहीं। इससे बचना चाहिए। दिन भर के कार्यों को महत्त्व प्रदान कर जिस प्रकार ठीक तरह सम्पन्न किया जाता है, वैसा ही व्यवहार नींद के साथ भी होना चाहिए। मस्तिष्क को इसका प्रशिक्षण दिया जाए। मशीन यदि बिना रुके दिन भर चलती रहे तो वह भी गर्म हो जाती है। नींद ठंडक पहुँचाने का साधन है। वह हमारे शरीर की उस बैटरी को पुनः सक्रिय बना देती है जो दिन भर कर कार्य के बाद निष्क्रिय हो जाती है। वह खर्च की हुई शक्ति को पुनः वापस करती है। बिस्तर पर लेटने से पूर्व २ से ४ मिनट तक शांतिपूर्वक बैठिये। दिन भर के कार्यों से सम्बद्ध विचारों को दूर कीजिए। ऐसा करने की साधारण विधि यह है कि 'इष्ट मंत्र' का मानसिक रूप से जप आरंभ कीजिये। आपको परेशान करने वाले विचार स्वतः दूर हो जायेंगे। पश्चात् कुछ समय के लिये अपने इष्ट का ध्यान कीजिए। इसी स्थिति में बिस्तर पर लेट जाइए।

योग निद्रा का अभ्यास

बिस्तर पर पीठ के बल चित लेट जाइए।

पैर कुछ दूर-दूर करीब एक फुट के अन्तर पर रखिए।

दोनों हाथ बगल में रहें, हथेलियाँ ऊपर की ओर खुली रहें।

सिर तकिया पर रहे।

तकिया अधिक ऊँचा न हो।

आँखें बन्द कर लें।

अब क्रमशः पैरों को शिथिल करते जाइए।

शिथिलीकरण की क्रिया पंजों से शुरू कर हाथ एवं सिर तक करें।

शिथिलीकरण के समय अंग विशेष पर चेतना को लाइये और उस अंग की क्रिया के प्रति जागरूक रहिये।

आराम का अनुभव कीजिये।

यदि आप चाहें तो अन्य अंगों के जोड़ों को भी बारी-बारी से शिथिल कर सकते हैं। उदाहरणार्थ—एड़ी, फिर सब अंगुलियाँ, पंजे का निचला भाग, घुटना, जांघ आदि। सभी अंगों को शिथिल किया जा सकता है।

अपनी चेतना को एक के बाद एक भी अंगों पर लाइये और ऐसा अनुभव कीजिए कि वह अंग पूर्णतः शिथिल एवं आराम की अवस्था में है। इस क्रिया से शरीर के सभी अंग-प्रत्यंग हल्के हो जायेंगे और उनका तनाव कम हो जाएगा।

दोनों पैरों को इस प्रकार शिथिल करने के बाद यही क्रिया हाथों पर कीजिए। हाथों को अलग-अलग या एक साथ या अपनी इच्छानुसार शिथिल कर सकते हैं। पूरे हाथों को भी आप एक साथ शिथिल कर सकते हैं या एक भाग को भी लेकर शिथिलीकरण किया जा सकता है, जो अपेक्षाकृत सरल विधि है। दाहिने हाथों की पाँचों अंगुलियाँ एक के बाद एक, सब अंगुलियों के सन्धि-स्थान, हथेली, कलाई, हाथ, कोहनी, भुजा आदि को क्रमशः शिथिल कर चेहरे पर आइये। यहाँ ठुड़ी, गाल, ऊपर का ओंठ, नीचे का ओंठ, दोनों नासिका छिद्र, पूरी नाक, आँख की पुतलियाँ, दोनों भौंह, कान, सिर आदि को लेते हुए उन्हें शिथिल कीजिए।

शरीर के सभी अंग-प्रत्यंगों को शिथिल करने के बाद सम्पूर्ण अंगों को एक के बाद एक शिथिल कीजिये। कमर के नीचे के अंग प्रथम शिथिल करें। उसके बाद पंजों की ओर आइये।

अन्त में सिर से पैर तक सभी अंगों को क्रमशः शिथिल कीजिये। अनुभव कीजिये कि आपका सम्पूर्ण शरीर प्राण रहित हो गया है और आप उसे देख रहे हैं। यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यह सम्पूर्ण क्रिया शायद ही पूर्ण हो। साधारणतः क्रिया के चतुर्थ भाग या अर्ध भाग की समाप्ति तक ही व्यक्ति गहरी नींद में पहुँच जाता है। यदि पूर्ण क्रिया के बाद नींद आए तो यह अत्यधिक लाभप्रद होगा। क्रिया का अन्तिम भाग सम्पन्न करते हुए अर्थात् क्रिया की पूर्ति पर ही नींद होनी चाहिए। यदि क्रिया की समाप्ति के पूर्व नींद आए तो भी अनुचित नहीं है। यह भी पर्याप्त लाभ प्रदान करेगी।

इसका अभ्यास दो विधियों द्वारा हो सकता है—

१. प्रत्येक अंग को एक साथ शिथिल कर, अथवा

२. प्रत्येक उपांगों को अलग-अलग शिथिल कर।

संक्षेप में इसे इस प्रकार किया जा सकता है। सर्वप्रथम एक पैर, पश्चात् दूसरा पैर, फिर एक हाथ, बाद में दूसरा हाथ, पीठ, पेट, छाती, गर्दन, मुख आदि को क्रमशः शिथिल किया जा सकता है।

द्वितीय अभ्यास में पहले दाहिने हाथ के उपांगों को फिर बायें हाथ के उपांगों

को शिथिल करना उत्तम है। दाहिने पैर की अंगुलियों से प्रारम्भ कर मध्य के सभी अंगों को शिथिल कर सिर तक जाइए और फिर सिर से शिथिलीकरण प्रारम्भ कर मध्यवर्ती सब उपांगों को शिथिल करते हुए बाँयें पैर की अंगुलियों तक आइये। शरीर का छोटा से छोटा अंग भी छूटने न पाए। यदि आप कोई अंग—जैसे घुटना भूल गए हैं तो पुनः वहाँ से प्रारम्भ मत कीजिये। वह गलत है। यदि प्रारम्भिक अवस्था में कोई अंग छूट भी जाय तो कुछ हानि नहीं है। अभ्यास करते जाइए। धीरे-धीरे आपको सब अंग याद आते जायेंगे। पश्चात् आप इस अभ्यास को स्वाभाविक विधि से करने में सफल होंगे।

दिन के समय भी इस क्रिया का अभ्यास किया जा सकता है। कठिन कार्यों के बीच यदि अवकाश प्राप्त होता है तो इस विधि द्वारा आराम किया जा सकता है। समयानुसार इस क्रिया का अभ्यास छोटे रूप में कर सकते हैं।

यदि समय कम होगा तो इस अभ्यास का समय भी कम रहेगा। यदि समय पर्याप्त है तो प्रत्येक अंग के लिये अधिक समय दिया जा सकता है। एक बात बहुत महत्व की है यदि आप इसका अभ्यास दिन के समय करते हैं तो नींद नहीं आनी चाहिए। आपको सचेत रहना होगा क्योंकि यह नींद कम करने की क्रिया है।

इस अभ्यास में एक विशेषता है कि यदि आपने अभ्यास के पूर्व नींद की अवधि का निश्चय किया है तो ठीक इतनी ही अवधि के पश्चात् आपको हल्का झटक-सा लगेगा और आप जाग्रत अवस्था में आ जायेंगे। जो बातें ऊपर बताई गई हैं वे सत्य हैं और अनुभव के आधार लिखी गई हैं। ये यौगिक अभ्यास हैं, केवल कल्पना पर आधारित नहीं।

कुछ और बातें सीखने की है। अत्यन्त व्यस्त व्यक्ति जिसे दिन भर के कार्य के बीच १०-१५ मिनट भी विश्राम प्राप्त नहीं होता वह इसका अभ्यास कार्य के समय भी कुर्सी पर बैठे-बैठे कर सकता है।

कार्यालय में कुर्सीपर बैठे हुए दो से पाँच मिनट तक इसका अभ्यास कीजिये। आप की सब थकान दूर हो जाएगी। सब शारीरिक और मानसिक तनाव दूर हो जाएगा। जो अधिक बौद्धिक कार्य करते हैं उन्हें इस क्रिया को दिन भर में दो या तीन बार कम से कम दो निमट के लिए करने की सलाह है।

शिथिलीकरण के अभ्यास की अन्य कई विधियाँ हैं। अपनी रुचि के अनुसार उनमें से किसी एक का भी चुनाव किया जा सकता है।

बिस्तर पर सीधे लेट जाइये। पूरे शरीर को एक साथ शिथिल कीजिये। अनुभव कीजिये कि आपका शरीर बिस्तर पर है और आप उससे अलग हैं। यह भी अनुभव कीजिये कि आप बिस्तर पर सोये हुए अपने शरीर को देख रहे हैं। पाँच मिनट के लिए अपने शरीर को ढीला और शिथिल कीजिये। पश्चात् एक, दो, तीन, चार और आगे गिनना प्रारम्भ कीजिये।

अपनी श्वास के साथ जब तक हो सके गिनते रहिये। यदि आप स्वस्थ हैं तो सौ, एक सौ पचास से अधिक न गिन सकेंगे।

शिथिलीकरण की एक अन्य विधि है। गिनती के बदले आप भ्रूमध्य पर ध्यान कीजिये। ॐ या 'सोऽहम्' का जप प्रारम्भ कीजिये। जब तक आप जाग्रत अवस्था में हैं तब तक जप कीजिये।

भ्रूमध्य पर मन को एकाग्र कर जप करते हुए सोने से गहरी नींद आएगी। ऊपर दर्शाये गये सभी लाभ आपको प्राप्त होंगे। आवश्यकता इस बात की है कि आप अपनी इच्छानुसार किसी एक विधि का चुनाव कर लें। उसका अभ्यास कुछ महीनों या कुछ दिनों तक कीजिये।

इस अभ्यास की एक विधि और है। शरीर को कुछ देर के लिए विश्रान्त करने के पश्चात् अपना ध्यान श्वास पर लाइये। श्वास को मानसिक रूप से देखिये। श्वास के साथ ॐ या सोऽहम् का योग कीजिये। श्वास लेते समय मानसिक रूप से ॐ या सोऽहम् का उच्चारण कीजिये। श्वास बाहर छोड़ते समय इसकी पुनरावृत्ति कीजिये। प्रत्येक श्वास के आने-जाने के साथ मानसिक रूप से ॐ या सोऽहम् कहिये।

चार मन्त्रों के रूप में भी जप किया जा सकता है—वह है चतुर्थ प्राणायाम। श्वास के भीतर जाते समय और बाहर आते समय चार-चार बार मन्त्र का उच्चारण कीजिये। इस प्रकार देर तक करने से पूर्ण मानसिक एकाग्रता आ जाती है और नींद जल्दी आती है।

अब इनमें से कोई एक विधि का चुनाव कर लीजिये और प्रतिदिन उसका अभ्यास कीजिये। इन अभ्यासों में कुछ संशोधन कर इनके द्वारा जिज्ञासु अपेक्षाकृत गहरी दुनिया में प्रवेश कर सकता है। इन अभ्यासों को आप गुरु से सीख सकते हैं। इन गहरे एवं उत्तम अभ्यासों को ही नहीं बल्कि इनका कुछ अंश भी गुरुकृपा के बिना नहीं सीखा जा सकता।

आध्यात्मिक क्षेत्र और उसकी खोज

अलौकिक रहस्य के ज्ञाता, अध्यात्मवादी, साधु, सन्तों, विद्वानों और शास्त्रों के पास इस बात का प्रमाण है कि हमारे इस जगत के अतिरिक्त भी अन्य सृष्टियाँ हैं। हजारों की संख्या में व्यक्तियों के दैनिक जीवन के असाधारण अनुभव भी इस बात का विश्वास दिलाते हैं कि भौतिक आँखों की ग्रहण शक्ति से परे भी कुछ रहस्यमय क्षेत्र है।

इसके अतिरिक्त प्रतिदिन हम अनेक व्यक्तियों को मृत्यु द्वार से होते हुए दूसरे लोक में जाते देखते हैं। इससे अधिक और प्रमाण की आवश्यकता क्या है ? यदि है तो शांतिपूर्वक बैठिये। एक क्षण के लिए सोचिये कि दूसरे ही पल आपकी मृत्यु होने वाली है। डरिये नहीं। अपने विचारों को समीप से देखिये। यदि आप मर जायेंगे तो क्या होगा ? आपको कैसा अनुभव होगा। आप सभी जीवित हैं, चेतना और अच्छी बुद्धि तथा ज्ञान से पूर्ण हैं। मर कर आप कुछ भी नहीं रह जायेंगे। आप यह कभी अनुभव नहीं करेंगे कि आप शरीर की मृत्यु को रोकेंगे। आपकी चेतना कहीं और बनी रहेगी। यही आध्यात्मिक विश्व है जो अदृश्य और अगोचर है।

इसका कारण हमारा यह विश्वास है कि रहने के लिए केवल यही जगत नहीं है। कुछ अन्य सृष्टियाँ भी हैं, जहाँ हम अपने सूक्ष्म शरीर में भ्रमण और विचरण करते हैं। इस जगत में अपेक्षाकृत अच्छे एवं सूक्ष्म तत्वों का समावेश है।

हमारा यह जगत पाँच स्थूल तत्वों से निर्मित है। ये तत्व हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश।

आध्यात्मिक सूक्ष्म प्रदेश आकाशीय तत्वों से बना है जिसमें अति सूक्ष्म लहरें हैं जिन्हें किसी भी विधि से हमारी वर्तमान इंद्रियों द्वारा पकड़ा नहीं जा सकता। इनका प्रयोग हम सूक्ष्म लोक की लहरों को ग्रहण करने में करते हैं।

मनुष्य की बुद्धि और शक्ति उस दीपक के तुल्य है जो उस स्थान का अन्धकार दूर करता है, जहाँ वह जाता है। यदि शक्ति का उपयोग आप अध्ययन या कला के अभ्यास में करेंगे तो आप कलाकार कहलाएँगे। यदि आप संगीत में लगाएँगे तो आप संगीतज्ञ कहलाएँगे। यदि आप वैज्ञानिक शोध कार्य में लगायें तो एक वैज्ञानिक के नाम से जाने जाएँगे। इसी शक्ति का उपयोग जो अदृश्य सत्ता,

अगोचर जगत और प्रकृति के नियमों की खोज के लिए करता है तो वह साधक या योगी कहलाता है। योग विचारों की पाठशाला है। यहाँ शरीर एवं मन की सीमाओं को विस्तृत करने की विधि सिखाई जाती है। योग के अध्ययन और अभ्यास के लिए जो व्यक्ति अपनी शक्ति का उपयोग करते हैं वे अपनी चेतना को निम्न स्तर से उच्च स्तर पर ले जाकर अपने लक्ष्य को उन्नत बनाते हुए उसमें सुधार लाते हैं।

यदि हम उन इन्द्रिय सुखों में व्यय होने वाली अपनी शक्ति को रोकें जिनका कोई स्थायी मूल्य नहीं है तो हम अपने को अधिक मजबूत और शक्तिशाली अनुभव करेंगे। जब व्यक्ति किसी वस्तु पर ध्यान करता है या अदृश्य गुप्त सत्य के ज्ञान का प्रयत्न करता है तो इस संचित शक्ति के द्वारा उसे सफलता हाथ लगती है। उसकी दृष्टि एवं ग्रहण शक्ति इतनी सूक्ष्म हो जाती है कि वह पदार्थ के मोटे आवरण के भीतर देख सकता है।

साधारण व्यक्ति समूह के लिए यह आध्यात्मिक विश्व अगम्य है। इस दृष्टि से यह अत्यन्त समीप होते हुए भी अति दूर है। फिर भी जो व्यक्ति कठिन परिश्रम के लिए तैयार हैं उनके लिए इस आध्यात्मिक क्षेत्र की प्राप्ति सुलभ है। इसके द्वारा प्राप्त ज्ञान का सदुपयोग स्वयं के हित के लिए नहीं वरन् मानव मात्र की उन्नति के लिए किया जाना चाहिए।

अभ्यास के लिए व्यक्तिगत अभ्यास एवं लगनशीलता ही प्राथमिक आवश्यकता है। परन्तु जब व्यक्ति को इस अलैकिक ज्ञान की प्राप्ति होती है तो उसे इस संसार में नहीं रहना चाहिए। तात्पर्य यह है कि उसे सांसारिक लोगों की तरह अभिलाषा, इच्छा एवं व्यवहार नहीं रखना चाहिए। उसे चेतना की उच्चतम स्थिति में रहना चाहिए। कम से कम उसे इसके लिए उसी तरह प्रयत्नशील रहना चाहिए जब तक अनुमति पत्र की प्राप्ति न हो जाय। उसे भोजन, नवीन तरह के वस्त्र या रहन-सहन की विधि, राजनीति, शक्ति, धन आदि का ध्यान नहीं रखना चाहिए। ऐसा करने में हानि नहीं है परन्तु इसमें अपव्यय होने वाली शक्ति को संचय कर उसे योगाभ्यास में लगाना चाहिए। साधकों को या आध्यात्मिक खोज करने वाले विद्यार्थियों को स्वतन्त्र विचार रखना चाहिए। दूसरे के विपरीत विचारों से अपने को बचाना चाहिए जो आपके द्वारा प्राप्त परिणामों पर अच्छा या खराब प्रभाव डाल सकते हैं।

यदि आप सांसारिकता के प्रति अनासक्ति का भाव रखें तो आपके लिए उच्च चेतना का मार्ग प्रशस्त होता जाएगा। जब तक आप संसार के वस्तुओं के प्रति आसक्ति की डोर नहीं काटेंगे तब तक आप अपना सम्बन्ध असाधारण जगत से नहीं जोड़ सकते। यही कारण है कि शास्त्र एवं सन्तों ने वैराग्य अर्थात् अनासक्ति की सलाह दी है। इसकी प्राप्ति तभी हो सकती है जब हम अपनी भावनाओं एवं विचारों, जो प्रत्येक निरर्थक बातों से अर्थात् निम्न कोटि की पुस्तकों

के पठन में, दूसरों को सताने में, पत्थर के छोटे से टुकड़े से जेट, स्पूतनिक आदि बनाने में निरन्तर खर्च होने वाली शक्ति को व्यय करेंगे। यदि हम ऐसा करेंगे तो धीरे-धीरे आत्मा की आवाज सुनने, अदृश्य को देखने, स्वाद-रहित वस्तु का स्वाद लेने एवं गन्धहीन वस्तु को भी सूंघने आदि की शक्ति का विकास करने में समर्थ होंगे।

इसके पीछे यह रहस्य है कि इस पृथ्वी के परे भी एक विशाल जगत है, जीवन है एवं दिव्य ज्ञान का संग्रह है। हम इस संसार में रहते हुए भी उससे अनभिज्ञ हैं। हम वस्तुओं के प्रति जागरूक शायद इसलिए नहीं हैं क्योंकि हमारी सम्पूर्ण शक्ति संसार की केवल सारहीन वस्तुओं की प्राप्ति की ओर लगी है। हम रोटी, कपड़े, टेलीविजन, शिक्षा, पद आदि अनेक वस्तुओं के लिये जीते हैं। अलौकिक या दिव्य ज्ञान की प्राप्ति के लिये श्रम करने की किसे चिंता है, परन्तु जो व्यक्ति इसकी प्राप्ति के लिए तनिक भी प्रयास करते हैं उन्हें प्रचुर मात्रा में ज्ञान की प्राप्ति होती है। मानव इतिहास में इन व्यक्तियों को सन्त, महात्मा, योगी, मनीषी आदि कहा जाता है।

मनीषीगण अपनी कला को व्यवस्थित कर अपने उत्तराधिकारी को सौंपने में सावधान रहते हैं। यही कारण है कि अनेक विरोधी परिस्थितियों के बाद भी उनका ज्ञान सुरक्षित है।

यदि आप आध्यात्मिक जगत के विषय में कुछ जानना चाहते हैं तो सर्वप्रथम कुछ अभ्यास को नियमित रूप से करने के लिए अपने को तैयार कीजिये। प्रातः दो बजे उठिये। उस प्रारम्भिक विधि का अभ्यास कीजिये, जो नवीन साधकों के लिए आवश्यक है। यह अभ्यास आगे बढ़ने के लिए आपको प्रेरित करेगा।

खोज की प्रक्रिया

इस कार्य के लिए आपके पास एक स्वतंत्र कक्ष होना चाहिए।

एक पुराना लटकता हुआ कैलेन्डर लीजिए।

पौन इंच व्यास का एक काला गोलकार चिह्न कैलेन्डर के पीछे बनाइए।

एक मोमबत्ती जलाइए।

कुर्सी पर या भूमि पर दीवार के समीप अपने बैठने की व्यवस्था कीजिए।

कैलेन्डर को दीवार पर इतनी ऊँचाई से लटकाइए कि चिह्न आपकी आँखों की ऊँचाई पर रहे।

अपनी कुर्सी या आसन के बायीं ओर एक छोटा टेबल रखें।

जब अभ्यास करें तब एक मोमबत्ती जला कर उस टेबल पर रखें।

प्रतिदिन प्रातः दो बजे अभ्यास के लिए बैठिए।
 काले बिन्दु को बिना पलक झपकाये देखते जाइए।
 पूर्ण एकाग्रता से देखिए। दृष्टि एकाग्र एवं स्थिर हो।
 प्रारम्भ में यदि आपकी आँखें थक जाती हैं या उनमें जल भर आता है तो आँखें
 बन्द कर दस सेकेण्ड आराम कीजिये।
 पश्चात् पुनः बिन्दु की ओर टकटकी लगाकर देखना प्रारम्भ कीजिए।
 जब आप बिन्दु की ओर देखने का प्रयास कर रहे हैं उस समय बिन्दु की अपेक्षा
 अन्य किसी वस्तु पर दृष्टि न डालें। बगल की चीजें न देखें।
 काले बिन्दु से निकलने वाले प्रकाश को भी मत देखें। जैसे ही देखने की क्रिया
 में पूर्ण एकाग्रता आ जाएगी वैसे ही काले बिन्दु के चारों ओर प्रकाश घिर
 जाएगा। यह प्रकाश आपकी दृष्टि को हटाएगा और आपको इसे देखने की इच्छा
 होगी परन्तु आप ऐसा करने से बचें।
 इसी काले बिन्दु को देखते जाइए जब तक आँखों के सामने कुछ भी दिखाई नहीं
 दे और आपका मन शून्य हो जाय। काला बिन्दु, प्रकाश, कैलेन्डर का प्रकाश
 कुछ भी आपको दिखाई नहीं पड़ता।
 इस समय अनेक विचार आपके मन में उत्पन्न होंगे और आपके कार्य से आपको
 डिगाने का प्रयास करेंगे, परन्तु इन विचारों से आप अलग रहें। विचारों को अपने
 मन में प्रवेश करने की अनुमति मत दें।
 बिन्दु की ओर तब तक देखते जाइए जब तक कि वह अदृश्य नहीं हो जाता
 और खुली या बन्द आँखों से आपको कुछ स्वरूप दिखाई नहीं पड़े।
 यह अभ्यास चारों ओर के संसार से मन का सम्बन्ध अलग कर देता है और
 उसे अर्धचेतन शक्तिके अधिकार में दे देता है जिसका सीधा सम्बन्ध आध्यात्मिक
 दुनिया से है।



आत्म चैतन्य

आत्मानुभूति योग

आत्म जागृति का विकास कई अवस्थाओं में किया जाता है। इस क्रिया के द्वारा आप अंततः अपने भीतर छिपी शक्ति के अस्तित्व का अनुभव कर सकेंगे। 'जप' और 'ध्यान' के योगिक अभ्यास के समय आप इसका विकास कर सकेंगे। उचित विकास के बाद आत्म जागृति एक सत्य और एक अनुभव की वस्तु बन जाती है।

आत्म चैतन्यता के लिए किए जाने वाले अभ्यास के पूर्व कुछ महत्त्वपूर्ण बातों का वर्णन हम कर रहे हैं।

शारीरिक चेतना, प्राणिक चेतना, मानसिक चेतना, सूक्ष्म चेतना, सुप्त चेतना और परा चेतना। ये चेतना की छः अवस्थाएँ हैं।

जब आप एक आसन में बैठते हैं तो प्रथम चेतना शारीरिक चेतना कहलाती है। फिर आप धीरे-धीरे श्वास लेते और छोड़ते हैं। कुछ समय बाद आपको अनुभव होता है कि आपकी शारीरिक चेतना कम होती जा रही है और आप आने-जाने वाली श्वास के प्रति अधिक चैतन्य हैं। यह अनुपातिक रूप से होता है। आप प्राण के बहाव के प्रति अधिक चैतन्य हो जाते हैं। परिणामतः कुछ समय बाद शारीरिक चेतना गौण हो जाती है और प्राणिक चेतना प्रधान हो जाती है। इस स्तर पर आप श्वसन का अनुभव करेंगे।

जब आप श्वसन के प्रति चैतन्य रहते हैं तब उसे प्राणिक चेतना कहते हैं। जब वह मुख्य वस्तु बन जाती है तब यह शारीरिक अचेतनावस्था कहलाती है। आप अपने शरीर के प्रति अचेतन हो जाते हैं।

अब 'प्राणिक चेतना' में मंत्र 'ओम्' या 'सोहं' का संयोग कीजिए। 'सोहं' के प्रति चैतन्य बनिए। तब आप भीतर जाने वाली श्वास के साथ 'सो' और बाहर जाने वाली श्वास के साथ 'हं' मन्त्र का अनुभव करेंगे। कुछ समय बाद आप श्वासों के प्रभावों का अनुभव नहीं करेंगे। केवल 'सोहं' पर आपकी चेतना रहेगी। यह चेतना गहरी हो जाएगी तो आपकी दृश्य दिखाई देंगे।

जैसे ही आप दृश्य देखते हैं मानसिक चेतना का सूक्ष्म चेतना के साथ लय होना प्रारम्भ हो जाता है। इस अवस्था में 'अजपा' के सब रूप बढ़ती हुई चेतना सूक्ष्म में विलीन हो जाते हैं। आप मानसिक धरातल से परे की भूमि में उतरेंगे।

यहाँ व्यक्तिगत चेतना स्थगित हो जाती है। परिणामतः साधक गहरी निन्द्रा अवस्था में पहुँच जाता है। वह क्रिया के प्रति भी सचेत नहीं रह पाता है। जो व्यक्ति शवासन में इसका अभ्यास करते हैं वे केवल प्रातःकाल ही चेतना को पुनर्जीवित कर सकेंगे, परन्तु 'पद्मासन' में अभ्यास करने से व्यक्ति समय-समय पर जाग्रत होते रहेंगे।

प्रत्येक आध्यात्मिक अभ्यासी सूक्ष्म चेतना तक साधारण निर्देशन और अभ्यास से पहुँच सकता है और अनुभव प्राप्त कर सकता है। जब आत्मा चेतनावस्था को प्राप्त करती है तो साधकों को भिन्न-भिन्न अनुभव प्राप्त होते हैं। वह आध्यात्मिक हलचल, झपकी, दृश्य, स्वप्न और इसी तरह के अनुभव प्राप्त करेगा। इस स्थिति में वह आत्मा के सूक्ष्म एवं स्थूल क्षेत्रों के बीच विचरण करता है। इसके आगे व्यक्ति अकेला नहीं जा सकता। यह पूर्ण अंधकार का क्षेत्र है। यहाँ आपको समय, स्थान आदि की चेतना नहीं रहती। मस्तिष्क की सभी क्रियाएँ पूर्णतः निरुद्ध रहती हैं। यहाँ इच्छा की कोई क्रिया नहीं होती। परिणामतः साधक पुनः दृश्य जगत में वापस हो जाता है। पिर अचानक चेतना धीरे-धीरे मानसिक, प्राणिक और शारीरिक स्तर पर वापस लौट जाती है।

यदि आप चेतना के इस क्षेत्र से आगे जाना चाहते हैं तो केवल निर्देशन देना ही पर्याप्त नहीं है। किताबें, निर्देश, सत्संग आपके लिए सहायक नहीं होंगे। यहाँ 'गुरु की आवश्यकता है जो अंधकार में रोशनी उत्पन्न करेगा। गुरु चिदाकाश के अंधकार को दूर करने वाला है। 'गुरु' वह है जो अचेतन कक्ष से होकर आपको ले जाता है। योग में इसे पंचम कक्ष कहते हैं। गुरु की आवश्यकता होती है जो आपको उसमें से होकर ले जाए। जब साधक ध्यानावस्था में होता है तो वह कुछ सुन नहीं सकता। वह केवल गुरु के निर्देशों का पालन करता जाता है। गुरु की आज्ञा 'आज्ञा चक्र' 'भ्रूमध्य' में ग्रहण की जाती है। जिनका आज्ञाचक्र जाग्रत हो गया है केवल वे ही गुरु के आदेशों को सुन सकते हैं, अन्य कोई नहीं।

यह सर्वसाधारण विधि है—शरीर पर ध्यान कीजिए और आगे बढ़िए। 'श्वास' में प्राण पर ध्यान कीजिए उससे आगे बढ़िए। मन पर ध्यान कीजिए तथा उसे पार कीजिए। दृश्य पर ध्यान कीजिए और उसके उस पार पहुँचिए। पश्चात् जो व्यक्ति गुरु के साथ आगे बढ़ना चाहते हैं वे अचेतन मन पर ध्यान करें और उसे भी पार कर जायें। यह विधि अत्यन्त सरल तो नहीं है पर केवल मानसिक चैतन्यता के द्वारा इस अन्धेरे कक्ष को पार करना अत्यधिक कठिन है।

अभ्यास

पैरों को फैलाइए और अपने को शिथिल कीजिए। चेतना पूर्णतः बनी रहे। निश्चय रखिए कि आप पूर्ण शरीर का ख्याल कर रहे हैं। केवल एक ही विचार लाइए—मैं अपने शरीर का विचार कर रहा हूँ।

अखण्ड रूप से इन शब्दों पर आपकी चेतना बनी रहे।

शरीर के विचारों की चेतना निरन्तर बनी रहे।

यदि आप किसी रेडियो या मोटर की आवाज सुनते हैं तो दूसरा भाव रखिए। आप मन में यह विचार रख कर ध्यान में मत बैठिये कि आप पर किसी प्रकार का भी विघ्न नहीं आएगा। यदि कोई मानसिक भाव आप उत्पन्न करेंगे तो बाह्य वस्तुयें अधिक विघ्न डालेंगी। एक बार मानसिक चेतना के क्षेत्र में पहुँचने के बाद कोई भी वस्तु आपकी स्थिरता भंग नहीं कर सकती।

जब आप इस शारीरिक विचार का अभ्यास करेंगे तो नींद आ सकती है परन्तु तन एवं मन की मध्यवर्ती रेखा पर अपनी चेतना बनाए रखिए। जब आप ध्यान करेंगे तो इस सीमावर्ती रेखा को स्पष्ट रखेंगे। इस सीमा रेखा पर अपनी चेतना रखिए।

जब आप शरीर पर ध्यान करेंगे और सीमा रेखा का ख्याल करेंगे तो आप प्राणिक, मानसिक और सूक्ष्म चेतना के क्षेत्रों का अनुभव करेंगे। तब आप अचेतन क्षेत्र में जाएँगे। यदि आप शारीरिक चेतना पर पकड़ नहीं रख सकेंगे तो निश्चित रूप से अचेतन में पहुँच जाएँगे परन्तु वहाँ कोई दृश्य नहीं रहेगा। इसलिये अखण्ड रूप से अपनी चेतना बनाए रखिए। खण्डित चेतना हम नहीं चाहते, हम पूर्ण, एकरूप चेतना की इच्छा रखते हैं।

आप खुली या बन्द आँखों से इसका अभ्यास कर सकते हैं। बन्द आँखों से अभ्यास करना अपेक्षाकृत अच्छा है।

चाहे किसी भी आसन में आप इसका अभ्यास करें, आपको शरीर पर ध्यान रखना होगा। बिस्तर पर मत जाइये। आसन का ख्याल मत कीजिये। यह मत कहें—मैं सीधी स्थिति में हूँ, मैं छोटा हूँ, केवल कहिये—मैं हूँ, यदि अभ्यास के समय झपकी आए तो इच्छाशक्ति को जाग्रत कीजिये और मानसिक रूप से कहिये—मैं हूँ। इस स्थिति में शारीरिक विचार क्षीण होगा। आप पूर्णतः शरीर के प्रति अचेत नहीं रहेंगे परन्तु शारीरिक चेतना कम होती जाएगी। यह है शरीरहीन चेतना। 'मैं हूँ' के प्रति चेतना रहेगी परन्तु शरीर के प्रति जागरूकता नहीं रहेगी। इसे विदेह अवस्था भी कहा जा सकता है।

जब आप नींद लेते हैं तो आपको अनुभव होता है कि आप सो रहे हैं। उस समय शरीर के रहते हुए भी उसका ज्ञान नहीं रहता। यह करीब उसी तरह का अनुभव है। कृपया इसे अच्छी तरह समझिये, अन्यथा आपको दो कठिनाइयाँ होंगी। आप शरीर के विचार को पुनर्जीवित करेंगे या आप सो भी जायेंगे। आपको बहुत सावधान रहना पड़ेगा। यह वैसी ही स्थिति है मानो आप तनी हुई रस्सी पर चल रहे हैं।

यदि आप अन्दर की ओर जायेंगे तो आप सो जायेंगे या शरीर के विचारों पर लौटकर शरीर के प्रति जागरूक हो जायेंगे। इसलिए 'मैं हूँ' की शुद्ध

चेतना बिना किसी रूप, कम्पन, बिना किसी ठहराव एवं पद विभाजन के होनी चाहिए।

पर 'मैं हूँ' भविष्य में 'मैं ब्रह्म या भगवान हूँ' में परिवर्तित हो जाता है। सर्वप्रथम आप स्वयं के प्रति जागरूक हो जाते हैं। जब इस अभ्यास में आप दृढ़ हो जाते हैं तो आप अलौकिक चेतना के प्रति सचेत हो जाते हैं। यह एकमात्र बौद्धिक ग्रहणशीलता नहीं वरन् यह ज्ञान है। छठवें कक्ष में इस शारीरिक चेतना को पार करना पड़ता है।

अन्वेषण की विधि

चेतना का सम्बन्ध

जो मुझमें है वही सबमें है। मैं जो हूँ सब वही हूँ। इसी बात की प्राप्ति करनी है और जीवन में इसी का अनुभव करना है। सभी चराचर में एक ही तत्त्व है। हमारा अनुभव यह होना चाहिए कि सम्पूर्ण सृष्टि अभिन्न रूप से मेरे साथ शृंखलाबद्ध है। हमें यह अवश्य जानना चाहिए कि मन, शरीर और इन्द्रियों के बहुत परे एक अदृश्य शृंखला है जो अपने में सृष्टि के प्रत्येक दृश्य या अदृश्य विभिन्न मणियों को पिरोये हुए हैं। हम रक्त सम्बन्ध, सामाजिक सम्बन्ध, जाति सम्बन्ध और विभिन्न प्रकार के सम्बन्धों की चर्चा करते हैं। इन अनेक प्रकार के सम्बन्धों के साथ एक विशेष सम्बन्ध जोड़ना चाहिए जो सभी के साथ हमेशा के लिए है, वह है—अन्तरात्मा का सम्बन्ध। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि हम सब एक मूल-भूत तत्त्व के साथ आत्मा की इकाई द्वारा बंधे हुए हैं।

इस ज्ञान की प्राप्ति द्वारा हमारे विचार विशाल बनेंगे। जीवन के सभी क्षेत्रों में अपने साथियों, स्त्री-पुरुष, अच्छे-खराब, यहाँ तक कि पशुओं के साथ हम उचित व्यवहार करने लगेंगे। जब हम सबके बीच रहें तो कम से कम इस बात के अनुभव का प्रयास करें कि 'वह' जो मुझमें है 'वही' उनमें भी है और मूलतः हम समान और एक हैं। विभिन्न एवं अलग दिखाई देने पर भी सबमें अखण्ड एकता है।

इस ज्ञान की प्राप्ति की विधि क्या है ? जीवन में इसका अभ्यास कैसे किया जा सकता है ? किस रीति से इसका प्रयोग किया जाय ?

अपने पिता या भाई या बहन, पति या पत्नी या दोस्त का विषय लीजिए। ये सब आपको अपने सिद्धांतों, विचारों एवं श्रद्धा में भिन्न मालूम पड़ते हैं। अब कठिनाई से प्राप्त इस ज्ञान को, कि उसमें 'वही' है जो आप में है, दोनों तत्त्व समान थे और हमेशा समान हैं, अपने मन में लाइये। इस ज्ञान को अपने में ही तब तक घुमाते रहिये, जब तक कि ये विचार जल्दी-जल्दी न आने लगें। आपको स्वतः यह अनुभव होना चाहिए कि आपमें जो है वही उसमें भी है। कुछ समय के लिए मानसिक और आत्मिक दृष्टि से वे अलग ज्ञात होते हैं। सम्बन्धित होते हुए भी आपसे असम्बन्धित जान पड़ते हैं। अभ्यास के द्वारा जब

यह ज्ञान उच्च या गहन हो तो मूल तत्व की इकाई पर उचित ध्यान के बाद एक अदृश्य कड़ी का निर्माण हो जाएगा। आप अनुभव करेंगे कि वही दोनों में से होकर आ रही है। इसके पारिणामस्वरूप विपरीत समूह भी आपके विचारों, सिद्धान्तों एवं विश्वास आदि के प्रति जागरूक हो जाएगा। भिन्नता लाने वाले इन गुणों को वह पार कर जाएगा। भिन्नता की बात मिट जाएगी। सामान्य बातें प्रकट होंगी। व्यक्ति आपसे मित्रतापूर्ण बातचीत करने लगेगा। इस अद्भुत घटना को आत्मिक एकता कहते हैं जो कि शारीरिक एवं मानसिक भिन्नता के विपरीत है।

अब उस पशु के बारे में विचार करें जो आपकी योग्यता, ज्ञान एवं पहुँच के केन्द्र बिन्दु से बहुत दूर खड़ा मालूम पड़ता है क्योंकि उसकी आध्यात्मिक एवं मानसिक रचना अविकसित है। यहाँ भी इस ज्ञान को बारम्बार मन में दुहराइये कि जो मुझमें है वही उसमें भी है और दोनों के अन्तर्गत हमेशा एक तत्त्व है। इस ज्ञान को ठीक ध्यान के रूप में उस समय तक स्वयं में विचरण करने दीजिये, जब तक कि आप वास्तविक रूप से उस कड़ी के अस्तित्व का अनुभव न करें जो दोनों का योग करती है। जब उचित ध्यान के माध्यम से आप इस कड़ी का अनुभव करेंगे या तत्त्व को इकाई के रूप में देखेंगे, तब दोनों के मध्य एक अदृश्य सम्बन्ध स्थापित हो जाएगा। जिसका प्रभाव दोनों पर पड़ेगा। परिणामतः भिन्न तत्त्व एक ओर रह जायेंगे और दूसरा पक्ष किसी तरह आपके विचारों, सिद्धान्तों एवं व्यवहारों के प्रति जागरूक हो जाएगा और आपसे सम्बन्ध बनाने की इच्छा रखेगा। वह पक्ष आपका मित्र बन जाएगा। इसे ही 'आत्मिक एकता' कहते हैं।

जो मुझमें है वही सब में है—यही ज्ञान सच्चा है जिसे हम अपने मन में लाना चाहते हैं। इस ज्ञान की प्राप्ति के बाद न केवल आपको अमर आत्मा की कड़ी का ज्ञान हो जाएगा जिसका अस्तित्व सब में है वरन् आपका विश्वास, सिद्धान्त एवं व्यवहार भी इसी ज्ञान पर आधारित होगा।

किसी भी स्थिति में यह प्रण सामने रखिये कि इस ज्ञान का उपयोग आप अपने स्वार्थ-पूर्ति हेतु या दूसरे के व्यक्तित्व को महत्त्वहीन बनाने के लिए नहीं करेंगे। अपनी मानस-दृष्टि के सम्मुख हमेशा यह सत्य रखिए यह प्रयोग आत्मा या ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करने के लिए कर रहे हैं, जो हमारा अन्तर्तम तत्त्व है। इस सृष्टि में वह लय सब वस्तुओं की तरह उनमें भी है। आपको इस पवित्र एवं उन्नत सिद्धान्त के प्रति सचेत रहना चाहिए कि आप दूसरों पर प्रयोग इस उद्देश्य से कर रहे हैं कि आपको इस बात का ज्ञान हो जाये कि जो आप में वही है जो सभी में है। शरीर से परे सभी जीवों के विचार, भाव, हलचल, इन्द्रिय-ज्ञान आदि में एक ही अदृश्य सिद्धान्त का अस्तित्व है जिसका प्रयोग इस विशाल सृष्टि के पुरुष स्त्री पर और स्त्री पुरुष पर न

करें। इन्द्रिय ज्ञान आदि में एक ही अदृश्य सिद्धांत का अस्तित्व है पर इस विशाल सृष्टि की प्रत्येक वस्तु के भीतर है।

एक स्त्री को दूसरी स्त्री पर प्रयोग करने दीजिये। एक पुरुष दूसरे पुरुष पर अभ्यास करे। प्रथम एक अज्ञानी जानवर पर प्रयोग कीजिये परन्तु इस अभ्यास को केवल व्यक्तिगत, शारीरिक एवं मानसिक संबंध के लिए कीजिए। ज्ञान की प्राप्ति के लिए यह प्रयोग पुरुष स्त्री पर और स्त्री पुरुष पर न करें। इन्द्रिय ज्ञान आदि में एक ही अदृश्य सिद्धांत का अस्तित्व है पर इस विशाल सृष्टि की प्रत्येक वस्तु के भीतर है।

आन्तरिक इच्छा एवं शुद्ध उद्देश्य से किया गया ध्यान अवश्य सफल होता है। यदि प्रयोग हार्दिक रूप से एवं पवित्र मन से किया जाय और आदर्श विचार से न किया जाय तो आपकी आशा के विपरीत यह खतरा रहेगा कि व्यक्ति की क्रियाएँ नुकसानदायक हो जायेंगी।

इसलिए एक शत्रु को मित्र के रूप में परिणत करने के लिए इसका प्रयोग न करें। सब प्रयोग चेतना की अदृश्य कड़ी की खोज के लिए किए जायें। जिसने इसका अन्वेषण कर लिया वह योगी है क्योंकि 'एक ज्ञान' की प्राप्ति के द्वारा उसने विभिन्न तत्त्वों को शृंखलाबद्ध कर लिया है।

वे मनुष्य, जो घृणा को आश्रय देते हैं या कपट, द्वेष आदि भावना से प्रभावित हैं, इस अभ्यास से दूर रखे जायें। सर्वप्रथम वे इस गलत भावना को प्यार, दया, मित्रता, समझदारी, आनन्द के द्वारा दूर कर दें।

बिहार योग विद्यालय

परमहंस सत्यानन्द द्वारा स्थापित बिहार योग विद्यालय, स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती के मार्गदर्शन में आयोजित किए जा रहे योग कार्यक्रमों का मुख्य केन्द्र है तथा अन्तरराष्ट्रीय योग मित्र मण्डल का मुख्यालय भी है। इसकी स्थापना 1964 में गृहस्थों एवं संन्यासियों दोनों को ही योग का प्रशिक्षण देने के उद्देश्य से की गयी थी। इसी समय से यह अनूठी संस्था, जो देश का गौरव है, जन समुदाय को योग की प्राचीन पद्धति की ओर उत्प्रेरित करने के प्रयास में रत है। भारत तथा विदेशों में इसके अनेक सम्बद्ध केन्द्र हैं।

बिहार योग विद्यालय में सिखायी जाने वाली समग्र योग की पद्धतियों की आधारशिला है व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास में सहयोगी विधियों का समन्वय। साधनात्मक मार्ग पर चलने के इच्छुक व्यक्तियों को व्यावहारिक प्रशिक्षण देने के लिए क्रिया योग एवं तत्त्व शुद्धि सत्र, स्वर योग साधना सत्र तथा सामान्य साधना सत्र आयोजित किये जाते हैं। जिनमें योग के वैज्ञानिक पक्ष का, तथा साथ-ही-साथ आसन, प्राणायाम, षट्कर्म, योगनिद्रा एवं ध्यान की विधियों का सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक प्रशिक्षण दिया जाता है। यह अपने ढंग की पहली संस्था है जहाँ पर बिना भेद-भाव के महिलाओं और विदेशी संन्यासियों को भी प्रशिक्षित किया जाता है। अपने उत्कृष्ट संन्यास प्रशिक्षण के लिए यह संस्था सम्पूर्ण विश्व में विख्यात है।

योग द्वारा विभिन्न रोगों के उपचार के लिए 15-15 दिन के स्वास्थ्य रक्षा सत्रों का आयोजन किया जाता है, जिनमें प्रतिभागी अपनी-अपनी स्वास्थ्य समस्याओं के निवारण के लिए योगाभ्यास सीखते हैं।

बच्चों को भावी जीवन के लिए आध्यात्मिक संस्कार तथा योग-शिक्षा, जो उनके विकासशील व्यक्तित्व के सभी पक्षों का संवर्धन करती है, देने के लिए बाल योग मित्र मण्डल द्वारा बाल योग प्रशिक्षण सत्रों का आयोजन किया जाता है। इन सत्रों में प्रशिक्षित बच्चे देशभर के विद्यालयों में योग का प्रशिक्षण देने जाते हैं।

समाज में योग की उपयोगिता स्थापित करने के लिए औद्योगिक संस्थानों, चिकित्सा महाविद्यालयों एवं जेलों में योग प्रशिक्षण द्वारा अपराधियों की मानसिकता को बदलने का अनूठा प्रयोग भी विद्यालय द्वारा सफलतापूर्वक किया जा रहा है।

बिहार योग विद्यालय द्वारा सम्मेलनों, गोष्ठियों तथा व्याख्यानों के माध्यम से देश-देशान्तर में योग का प्रचार किया जाता है। इसके अतिरिक्त यह संस्था भारत तथा विश्व के विभिन्न देशों में योग सम्मेलनों, गोष्ठियों एवं व्याख्यानों के लिए प्रशिक्षित संन्यासी भी उपलब्ध कराती है। इन आयोजनों से योग में रुचि रखने वाले ऐसे लोगों को बड़ी सहायता मिलती है, जिनके लिए मुंगेर या इस आश्रम की किसी अन्य शाखा में जाकर अपनी शंकाओं का समाधान पाना सम्भव नहीं होता।

शिवानन्द मठ

शिवानन्द मठ एक दातव्य संस्था है। इसकी स्थापना सन् 1984 में परमहंस सत्यानन्द द्वारा अपने गुरु स्वामी शिवानन्द जी की स्मृति में की गयी। इसका मुख्यालय बिहार राज्य के देवघर जिले के रिखिया ग्राम में है। स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती इस संस्था के प्रधान संरक्षक हैं। इस संस्था का लक्ष्य है - सेवा, करुणा, प्रेम और स्नेह द्वारा समाज के शोषित पीड़ित एवं उपेक्षित वर्गों के विकास एवं उत्थान के लिए, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में, आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध कराना।

अब तक शिवानन्द मठ द्वारा कई परियोजनाएँ कार्यान्वित की जा चुकी हैं। उनमें पाँच सौ से अधिक योग्य छात्रों को छात्रवृत्ति का वितरण, प्राकृतिक आपदाओं से प्रभावित क्षेत्रों में गरीब लोगों के बीच अन्न-वस्त्र का निःशुल्क वितरण, जलापूर्ति की सुविधा प्रदान करने हेतु मुंगेर नगर के अन्दर 50 नलकूप लगाना एवं सन् 1990 में एक प्राइवेट बस-स्टैण्ड का निर्माण आदि प्रमुख हैं। रिखियाधाम में चिकित्सा सेवा उपलब्ध कराने हेतु एक छोटे दातव्य चिकित्सालय का निर्माण किया गया है।

वर्तमान में ग्रामीणों को जीविकोपार्जन के साधन - साइकिल रिक्शा, ऑटो रिक्शा, सिलाई मशीन, हाथ ठेला, दुकान का सामान इत्यादि उपलब्ध कराये जा रहे हैं तथा दैनिक उपयोग की वस्तुओं - वस्त्रों, कम्बलों, पुस्तकों, साइकिल, पशु-धन, इत्यादि के निःशुल्क वितरण द्वारा उनके जीवन-स्तर को सुधारने का प्रयास किया जा रहा है। कृषकों को उच्च गुणवत्ता के बीज, सिंचाई के साधन, ट्रैक्टर इत्यादि उपलब्ध कराये जा रहे हैं। ग्रामीणों के लिए कम लागत के आवास गृहों का निर्माण कर उनका वितरण किया जा रहा है।

भावी योजनाओं के अन्तर्गत गाँवों का अधिग्रहण, आदर्श गाँवों का निर्माण तथा पिछड़े क्षेत्रों के लिए शैक्षणिक साधनों एवं पाठ्य-पुस्तकों के वितरण का प्रावधान आदि शामिल हैं। लम्बी अवधि के लिए निर्धारित लक्ष्यों के अन्तर्गत सूखा प्रभावित क्षेत्रों में तालाबों, कुओं तथा नलकूपों का प्रावधान; विद्यालयों, पुस्तकालयों और छात्रावासों का निर्माण; अनाथालयों, विश्रामालयों, आश्रमों, चिकित्सालयों, उपचर्यागृहों, स्वास्थ्य केन्द्रों, प्राथमिक उपचार केन्द्रों तथा विकलांगों के लिए आश्रम की व्यवस्था आदि सम्मिलित किये गये हैं।

ये सेवाएँ समस्त जातियों एवं धर्मों के लोगों को प्रदान की जाती हैं। अग्रगामी योजनाओं के लिए कुछ पंचायतों का चयन कर लिया गया है। उनकी स्वास्थ्य एवं शिक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओं का सर्वेक्षण भी किया गया है, ताकि भविष्य में समय-समय पर दी जाने वाली सहायता का अनुमान लगाया जा सके।

योग रिसर्च फाउण्डेशन

योग शोध संस्थान की स्थापना सन् 1984 में परमहंस सत्यानन्द द्वारा की गयी। स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती इस संस्था के प्रधान संरक्षक हैं। इस संस्था का उद्देश्य है वैज्ञानिक रूप से योग का सही मूल्यांकन प्रस्तुत करना तथा मानव के भावी विकास के लिए इसे एक आवश्यक विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित करना। प्रारम्भ में इस शोध के अन्तर्गत योग के उपचारात्मक पहलुओं पर अनुसन्धान को समाविष्ट किया गया है।

संस्थान की प्रथम नियोजित परियोजना के रूप में श्वसन सम्बन्धी रोगों के पंचवर्षीय अध्ययन का चयन किया गया है। इसका कारण यह है कि इन रोगों से बड़ी संख्या में लोग प्रभावित हैं। प्रकाशित संवादों, प्रतिवेदनों एवं विवरणों से पता चलता है कि नियमित योगाभ्यास से इन रोगों में पर्याप्त लाभ मिलता है।

इस शोध कार्यक्रम का उद्घाटन गंगा दर्शन आश्रम में सन् 1989 की बसंत पंचमी के शुभ अवसर पर स्वास्थ्य के क्षेत्र में योगानुसन्धान से सम्बद्ध देश-विदेश के सौ से अधिक चिकित्सा शास्त्रियों की एक अन्तर राष्ट्रीय संगोष्ठी में किया गया। श्वसन सम्बन्धी रोगों पर योग के प्रभाव का अध्ययन करने के लिए वर्तमान में विश्वभर के लगभग 10,000 मरीजों पर एक अन्तरराष्ट्रीय अनुसन्धान कार्यक्रम चलाया गया है तथा उनसे सम्बन्धित आँकड़े इन देशों में कार्यरत 'योग चिकित्सा शोध केन्द्रों' के माध्यम से एकत्र किये गये हैं।

कार्यक्रम के प्रारम्भ में ही रोगियों का परीक्षण किया गया। परीक्षण की इस प्रक्रिया में शोध संस्थान के कम्प्यूटर युक्त स्पेरोमीटर द्वारा उनके सम्पूर्ण फेफड़ों की क्रियाशीलता की जाँच भी शामिल है। सहभागियों को अनेक योगाभ्यास सिखाये गये और बाद में एक निश्चित अवधि तक उन पर अभ्यास के परिणामस्वरूप पड़ने वाले प्रभावों को देखा गया।

भविष्य की योजनाएँ हैं - शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य एवं आध्यात्मिक उन्नति के लिए योग के कम प्रचलित पक्षों पर मौलिक साहित्यिक, शास्त्रीय, चिकित्सात्मक एवं वैज्ञानिक अनुसन्धान।

श्री पंचदशनाम परमहंस अलखबाड़ा

श्री पंचदशनाम परमहंस अलखबाड़ा की स्थापना परमहंस सत्यानन्द द्वारा बिहार के देवघर जिले के रिखियाधाम नामक स्थान में सन् 1990 में की गयी। इसका लक्ष्य संन्यास की उच्चतम परम्पराओं - वैराग्य, त्याग और तपस्या - को जीवन्त रखना तथा उनका प्रचार-प्रसार करना है। यह एक पंजीकृत, दातव्य, शैक्षिक एवं निःस्वार्थ कार्यकारी संस्था है।

यह वैदिक युग में ऋषि-मुनियों द्वारा अपनायी गयी तपोवन शैली की जीवन-पद्धति पर आधारित है। यहाँ न तो योग-शिक्षण के कार्यक्रम संचालित किये जाते हैं और न किसी धर्म या धार्मिक अवधारणाओं पर प्रवचन ही दिये जाते हैं। श्रीपंचदशनाम परमहंस अलखबाड़ा के लिए जो निर्देश निर्धारित किये गये हैं, वे वैदिक परम्परा की साधना, तपस्या, और स्वाध्याय या आत्मचिन्तन पर आधारित हैं। यहाँ इस बात की आवश्यकता पर विशेष बल दिया जाता है कि प्रत्येक संन्यासी अपने अन्दर उत्कृष्ट आध्यात्मिक गुणों को उत्पन्न एवं विकसित करे।

परमहंस सत्यानन्द जी अब यहाँ स्थायी रूप से निवास करने लगे हैं। वे वैदिक साधनाओं में निरन्तर लीन रहते हैं। इस प्रकार वे भावी परमहंसों के लिए इस महान् परम्परा को बनाये रखने का मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं। अलखबाड़ा के अन्दर प्रवेश पूर्णतः प्रतिबन्धित है ताकि लगनशील एवं दृढ़ संकल्पयुक्त साधकों की साधना में किसी प्रकार की विघ्न-बाधा उपस्थित न हो।

□ □ □

बिहार योग भारती

परमगुरु स्वामी शिवानन्द जी की कल्पना तथा परमहंस सत्यानन्द जी की दृढ़ इच्छा शक्ति को क्रियान्वित करने के क्रम में स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती ने योग विज्ञान के उच्च अध्यापन हेतु 1994 में गंगादर्शन परिसर में 'बिहार योग भारती' संस्थान की स्थापना की, जो विश्व की अपने ढंग की अनूठी और प्रथम ऐसी शैक्षणिक संस्था है, जहाँ योग दर्शन, योग मनोविज्ञान एवं व्यावहारिक योग विज्ञान की उच्चतम शिक्षा प्रदान की जा रही है।

विश्व की प्रचीनतम नालंदा एवं विक्रमशिला जैसे आध्यात्मिक विश्वविद्यालयों की परम्परा में योग, वेदान्त, तन्त्र एवं अन्य सम्बद्ध विषयों के क्षेत्र में समस्त विश्व में मानव जाति के वर्तमान एवं भविष्य के आध्यात्मिक चेतना के विकास हेतु यह संस्थान सतत् तत्परता से कार्यरत है। यह संस्थान विश्व के सभी विद्वानों, वैज्ञानिकों, चिकित्सकों एवं योग जिज्ञासुओं के लिए योग को मानव के आधुनिक समाज में किस प्रकार समाहित किया जाए, उसके लिए एक वैज्ञानिक आधार का निरूपण करने हेतु स्वर्णिम अवसर प्रदान कर रहा है।

योगविद्या की सनातन संस्कृति को समर्पित, प्राचीन गुरुकुल पद्धति पर आधारित बिहार योग भारती शैक्षणिक संस्थान और आश्रम परिवेश का एक बहुत सुन्दर समन्वय है। वस्तुतः यह एक प्रयोग है। सामान्य विद्यालयों, महाविद्यालयों या विश्वविद्यालयों में विद्यार्थी अध्ययन के लिए जाते हैं और अध्ययन काल समाप्त होने पर बाहर आकर अपने-अपने ढंग का जीवन जीते हैं। किन्तु यहाँ शिक्षा को आश्रम अनुशासन और आश्रम की दिनचर्या के साथ जोड़ने का प्रयास किया जा रहा है। यहाँ संचालित होने वाले सत्र आवासीय होते हैं। आधुनिक विश्वविद्यालयों से सर्वथा भिन्न, यहाँ का स्वच्छ, शान्त, योगमय वातावरण सम्पूर्ण विश्व के विद्यार्थियों के लिए आकर्षण का केन्द्र बन चुका है।

वर्तमान में यह संस्थान योगदर्शन, योग मनोविज्ञान एवं व्यावहारिक योग में दो वर्षों के एम.ए. एम.एससी. कोर्स, एक वर्ष का डिप्लोमा कोर्स और चार माह के सर्टिफिकेट कोर्स का संचालन कर रहा है और कालान्तर में यहाँ से एम.फिल., पी.एच.डी., डी.एस.सी., डि.लिट्. की डिग्रियों हेतु शोध की सुविधा उपलब्ध करायी जाएगी।

इस संस्थान में देश-विदेश के मूर्धन्य विद्वान् शिक्षण कार्य में योगदान दे रहे हैं। संस्थान के पुस्तकालय एवं प्रयोगशालाओं में बीस हजार से अधिक पुस्तकें एवं अन्य आधुनिक वैज्ञानिक उपकरण उपलब्ध हैं, जिनका उपयोग विद्वान् संन्यासियों के मार्गदर्शन में विद्यार्थियों द्वारा किया जाता है।

योग-साहित्य

बिहार योग विद्यालय के हिन्दी प्रकाशन

सत्संग

- सत्संग - भाग 1 (योग तरी तीरे तीरे), पृ. 185
- सत्संग (प्रथम भाग) पृ. 185
- सत्संग (द्वितीय भाग), पृ. 233
- सत्संग (तृतीय भाग) पृ. 212
- भक्ति योग सागर, भाग 1, पृ. 403
- भक्ति योग सागर, भाग 2, पृ. 453
- नर्मदा के तट पर, पृ. 275

तन्त्र एवं योग

- कुण्डलिनी योग, पृ. 335, सजिल्द
- जागो माँ कुल कुण्डलिनी, पृ. 160
- मूलबन्ध, पृ. 99
- शिव स्वरोदय, पृ. 96
- प्राण विद्या, पृ. 65
- तन्त्र योग क्रिया, पृ. 893
- बच्चों के लिए योग शिक्षा, पृ. 246
- स्वर योग, पृ. 168
- योग दर्शन, पृ. 460/-
- घेरण्ड संहिता, पृ. 394

अभ्यास सम्बन्धी

- आसन प्राणायाम मुद्रा बंध, पृ. 406
- ध्यान : तन्त्र के आलोक में, पृ. 335
- योगनिद्रा, पृ. 236
- क्रियात्मक योग, पृ. 148



- अजपात्रप एवं चिदाकाश धारणा, पृ. 64
- सूर्य नमस्कार, अजिल्द, पृ. 112

दर्शन शास्त्र

- ईश्वर दर्शन, पृ. 484, अजिल्द
- योग दर्शन, पृ. 460,
- पुरुष सूक्त, पृ. 113
- योग साधना, पृ. 224
- प्रश्नोपनिषद्, पृ. 205
- गीता दर्शन (वारहवाँ अध्याय), पृ. 85
- गीता दर्शन (पन्द्रहवाँ अध्याय), पृ. 77
- गीता मानस और अपरोक्षानुभूति, पृ. 60
- मुक्ति के चार सोपान, पृ. 212
(पातंजल योग सूत्रों का यौगिक भाष्य)
- कर्म संन्यास, पृ. 231
- तन्त्र दर्शन, पृ. 189
- गुरु शिष्य सम्बन्ध, पृ. 292
- योग सागर, पृ. 461

योगोपचार सम्बन्धी

- उच्च रक्तचाप पर योग का प्रभाव, पृ. 210
- पोलियो और योग, पृ. 116
- दमा और मधुमेह, पृ. 179
- अमरोली, पृ. 69
- समस्या पेट की समधान योग का

अन्य

- संस्कृत प्रबोधिनी - प्रथम सोपान, पृ. 603
- संस्कृत प्रबोधिनी - द्वितीय सोपान, पृ. 635
- संस्कृत प्रबोधिनी - तृतीय सोपान, पृ. 608

भजन एवं कवितायें

- सिद्ध प्रार्थना, पृ. 104
- बम् लहरी, पृ. 180

मुद्रण में

- गीता दर्शन (अध्याय १)
- संन्यास दर्शन
- रोग और योग
- नवयोगिनी तन्त्र
- योग साधना
- प्राण प्राणायाम प्राण विद्या
- सत्संग (चतुर्थ भाग)

पुस्तकें वी.पी.पी. द्वारा नहीं भेजी जातीं। विस्तृत जानकारी के लिए संपर्क करें -
बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, मुंगेर (बिहार) 811201

‘योग’ (अंग्रेजी) एवं ‘योगविद्या’ (हिन्दी) द्विमासिक पत्रिकायें
वार्षिक शुल्क 30/-, आजीवन सदस्यता शुल्क 300/-
भुगतान निम्नांकित पते पर भेजें—

शिवानन्द मठ, गंगादर्शन, किला, मुंगेर, बिहार—811201



पुस्तक संख्या

पुस्तक नाम

पुस्तक लेखक

पृष्ठ संख्या

पुस्तक की अवस्था

पुस्तक की मूल्य

पुस्तक की श्रेणी

पुस्तक की भाषा

पुस्तक की प्रकाशक

पुस्तक की प्रकाशक

पुस्तक की प्रकाशक

पुस्तक की प्रकाशक

पुस्तक की प्रकाशक

पुस्तक की प्रकाशक

पुस्तक की प्रकाशक

पुस्तक की प्रकाशक



बिहार योग विद्यालय

गंगादर्शन, मुंगेर, बिहार, 811201

ऑडियो एवं वीडियो कैसेट सूची

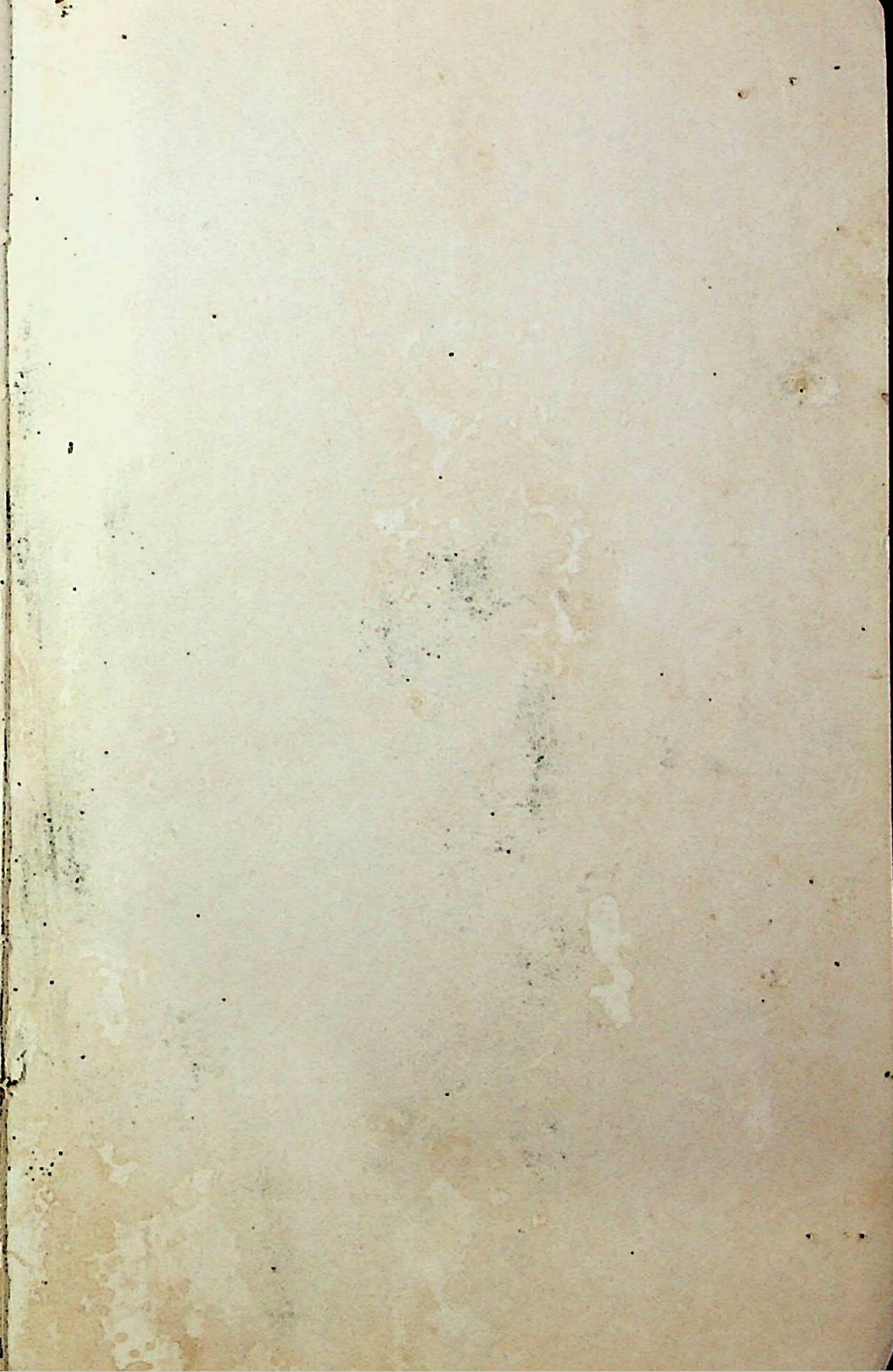
आडियो कैसेट

- योगनिद्रा एवं अजपाजप (हिन्दी)
 - परमहंस निरंजनानन्द
- योगनिद्रा एवं अन्तर्मौन (हिन्दी)
 - परमहंस निरंजनानन्द
- योगनिद्रा एवं अजपाजप (अंग्रेजी)
 - परमहंस सत्यानन्द, 90 मिनट
- योगनिद्रा एवं ध्यान (अंग्रेजी)
 - परमहंस सत्यानन्द, 60 मिनट
- योगनिद्रा एवं शून्य ध्यान (अंग्रेजी)
 - परमहंस निरंजनानन्द, 60 मिनट
- योगनिद्रा एवं चिदाकाश धारणा (अंग्रेजी)
 - परमहंस निरंजनानन्द, 60 मिनट
- योगनिद्रा एवं तपोवन संगीत (संगीत)
 - परमहंस सत्यानन्द, 60 मिनट
- भजन एवं कीर्तन
 - परमहंस निरंजनानन्द
- तपोवन मन्त्र
 - परमहंस निरंजनानन्द
- मन्त्रोच्चार एवं संगीत, दर्शन भाग 1,
मन्त्रोच्चार एवं संगीत, दर्शन भाग 2,
(परमहंस सत्यानन्द की कवितायें)
- पण्डित श्याम दास मिश्र, 60 मिनट

वीडियो कैसेट

- परमहंस सत्यानन्द जी के दर्शनों के सुअवसर पर परमहंस अलखबाड़ा, रिखिया में 1995 एवं 1996 में आयोजित कार्यक्रमों की वीडियो रिकार्डिंग :
- शतचण्डी महायज्ञ, 1995, भाग 1 से 6
 - राम नाम आराधना, 1996, भाग 1 से 6
 - सीता कल्याणम्, 1997, भाग 1 से 6

10-670







ISBN 81-85787-59-X